भारतीय साहित्य के निर्माता

वाल्मीकि



इलपावुलूरि पाण्डुरङ्गराव



साहित्य अकादेमी

वाल्मीकि

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई.
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

वाल्मीकि

इलपावुलूरि पाण्डुरंगराव



साहित्य अकादेमी

Valmiki: Hindi translation by I. Panduranga of his own monograph in English on the Ancient poet. Sahitya Akademi, New Delhi (2015), ₹50/-

प्रथम संस्करण : 1996
पुनर्मुद्रणः 1998, 2002, 2009 एवं 2015

साहित्य अकादेमी
मुख्य कार्यालय : रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : 'स्वाति', मंदिर मार्ग, नई दिल्ली 110 001
वेबसाइट : http://www.sahitya-akademi.gov.in
ई-मेल : ds.sales@sahitya-akademi.gov.in

क्षेत्रीय कार्यालय
172, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुंबई 400 014
सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी. आर. आंबेडकर वीथी, बेंगळूरु 560 001
4 डी. एल. खान मार्ग, कोलकाता 700 025

चेन्नई कार्यालय
मेन बिल्डिंग, गुना बिल्डिंग्स (द्वितीय तल), 443(304), अन्नासालइ, तेनामपेट, चेन्नई 600 018

ISBN: 978-81-260-0171-2
मूल्यः 50 रुपये

मुद्रकः स्वास्ति आफ़सेट, दिल्ली-32

त्वदीयं वस्तु काव्यर्षे
तुभ्यमेव समर्पये

(हे काव्यर्षि, यह वस्तु
तुम्हारी है और तुम्हीं को समर्पित है)

अनुक्रम

1

महाकाव्य-दर्शन

आदिकवि के रूप में विश्व-विख्यात और विश्ववंद्य वाल्मीकि भारतीय साहित्य के, विशेष रूप से संस्कृत साहित्य के, पहले कवि थे जिन्होंने महाकाव्य की विराट् चेतना और भावना को आत्मसात् करने वाली एक ऐसी सुश्लोक अभिव्यंजना का आविष्कार किया था जो कि जीव मात्र के प्रति कारुण्य और हितैषिता से ओतप्रोत प्रबुद्धचेता की भावुक भाव-लहरी को स्वर दे सके। जीव और जगत् के बीच तादात्म्य स्थापित कराने वाली इसी मनोदशा में उनकी कालजयी काव्य-कृति 'रामायण' उनके अंतरंग से प्रस्फुटित हुई। उससे पहले, देवर्षि नारद के मुंह से एक आदर्श मानव के लक्षणों का वर्णन सुनने के बाद उसके आधार पर एक महाकाव्य का प्रणयन करने के लिए उन्होंने अपने मन में पर्याप्त भूमिका बना ली थी। वाल्मीकि स्वयं एक महान् ऋषि थे और अपने दीर्घकालीन तपस्संपन्नता के बल पर उन्होंने जो लोकानुभव प्राप्त किया था, उसको देवर्षि के आशीर्वाद से समृद्ध बनाना चाहते थे ताकि उनकी गहरी साधना सही परिप्रेक्ष्य प्राप्त कर सके। जब नारद ने उनको बताया कि समस्त मानवता का कल्याण करने के लिए आवश्यक सभी सद्गुणों से सम्पन्न एक आदर्श मानव उन दिनों उन्हीं के बीच विद्यमान थे, तब वाल्मीकि ने अपने सपनों के साकार पुरुष की गौरव गाथा का गुणगान करने का संकल्प कर लिया।

गुरूदेव के अनुग्रह से अपने भीतर संचरित उदात्त भाव लहरी पर मनन करते हुए वाल्मीकि अपने शिष्य भरद्वाज को साथ लेकर तमसा नदी के तट पर टहलने गए। नदी के जल ने उनके ध्यान को आकृष्ट किया। नदी की प्रसन्न और प्रशांत लहरों को देखने पर महर्षि को उस महामानव की परिपक्वता और शालीनता को प्रकट करने वाले गुण याद आने लगे और ऐसा लगा कि एक ऐसे ही सज्जन के मन की तरह नदी का पानी बह रहा है। उनको वही छवि नदी में प्रतिच्छायित दिखाई दी।

पर दूसरे ही क्षण में उनको एक हृदय-विदारक दृश्य दिखाई दिया। एक निष्ठुर व्याध ने पक्षियों की एक जोड़ी में से एक को नीचे मार गिराया। बिछड़ी हुई चिड़िया बिलख रही थी। मुनि को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था क्योंकि वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि एक ओर जहाँ सदय हृदय की भांति प्रवाहित होनेवाली स्वच्छ जलधारा हो, वहीं पर दूसरी ओर इतना निर्दय निषाद भी हो सकता है जो जीवन के

प्राकृतिक आनंद में लीन भोले-भाले क्रौंच-मिथुन में से एक को अचानक और अकारण मार दे और इससे उसको भी कोई लाभ नहीं मिलनेवाला था। तपस्वी का हृदय तप कर छंद बन गया और उनकी वह शोकाकुल वाणी काव्य-जगत् के लिए युग युग एक संजीवनी शक्ति प्रदान करने वाली प्राभातिक स्वर लहरी बन गई। उद्‌गार का स्वर था :

मा निषाद प्रतिष्ठांत्वं अगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकं अवधीः काममोहितम्॥

(नहीं, नहीं निषाद, अनंत काल तक तुमको जीवन में कोई प्रतिष्ठा नहीं मिलेगी क्योंकि तुमने प्रणय-लीला में तल्लीन क्रौंच-पक्षियों की जोड़ी में से एक को मार गिराया है।)

ऋषि कवि बन गए। इस सुंदर छंद का सुस्वर उच्चारण करते समय तपस्वी को स्वयं आश्चर्य हो रहा था कि उनकी प्रखर भावना को व्यक्त करने के लिए उतनी ही प्रशस्त पद योजना अपने आप प्रस्तुत हो गई। साथ ही, उनका मन तनिक व्याकुल भी हो गया कि वे क्यों मन के क्षणिक आवेग में आकर अपने क्रोध पर काबू नहीं रख सके। आत्म-निरीक्षण के क्षण में उनका अंतरंग आश्चर्य प्रकट करते हुए अपने आप में कह रहा था : 'किमिदं व्याहृतं मया' (मैंने यह क्या कह दिया।)

परन्तु उन्होंने अपने मन को समझा लिया कि अपने आप निकली यह अंतर्वाणी किसी दैवी संकल्पना को सूत्रपात करनेवाली है। उनकी कारयित्री प्रतिभा को इससे बल मिला और उनको प्रेरणा मिली कि अनायास प्राप्त इस सुयोग का उन्हें सदुपयोग करना चाहिए। जब से उनके मन में राम का गुण वैभव और उनका अयनशील और समन्वयशील व्यक्तित्व प्रतिष्ठित हुआ, तब से इस इतिवृत्त को लेकर एक महाकाव्य की रचना करने की जो प्रबल प्रेरणा भीतर ही भीतर काम कर रही थी, उसको साकार बनाने का अब समय आ चुका है। उनको इस बात का आश्वासन भी मिला है कि वाग्देवी सरस्वती इस कार्य में उनके साथ रहकर आवश्यक पथ-प्रदर्शन करेगी ताकि वे समूचे घटनाक्रम को अपने भीतर परिकल्पित कर उसे महाकाव्य की गरिमा और लोक मर्यादा के अनुरूप सहज और सरल भाषा में प्रस्तुत कर सकें। इस प्रकार अपने मानस पुरुष को महाकाव्य का नायक बनाने का उनका महान् संकल्प सक्रिय होने लगा। भारतीय साहित्य का आदिकाव्य-रामायण-जो समय द्वारा निरंतर समादृत होता रहा, जन-जीवन के इतिहास के एक ऐसे चिरस्मरणीय क्षण में अवतरित हुआ जब महाकवि की मेधा मानवता की निर्मिति और अहिंसा का अनुपालन—इन दोनों बुनियादी मानव-मूल्यों को मानव-कल्याण को ध्यान में रखकर उजागर करने में निमज्जित हुई।

खेद की बात है कि विश्व विख्यात इस प्रशस्त कवि की जीवनी के सम्बंध में साहित्य जगत् को विशेष जानकारी नहीं है। कवि ने स्वयं अपने बारे में अधिक नहीं कहा और न इतिहास ने उनकी जीवनी का, यहाँ तक कि उनके जीवन-काल के

सम्बंध में भी, कोई प्रामाणिक विवरण नहीं दिया। काव्य के कथा-क्रम में उनका नाम केवल दो बार आता है और हर प्रसंग में कवि अपनी शालीनता के कारण बहुत कम बोलते हैं। जब राम अपनी पत्नी और भाई के साथ चित्रकूट जाते हुए मार्ग में ऋषि का आशीर्वाद लेने उनके आश्रम में जाते हैं तो वाल्मीकि सहज वात्सल्य और प्रेम के साथ उनका स्वागत करते हैं और अत्यंत आदर और सम्मान के साथ केवल एक ही शब्द कहते हैं–''आस्यताम्'' (बैठा जाए)। जब राम उनके आश्रम में पलभर बैठते हैं तो वह अपने को धन्य समझते हैं।

एक दूसरा प्रसंग जब वाल्मीकि रामायण के पात्र के रूप में दिखाई देते हैं, उत्तरकांड में आता है। लव और कुश के मधुर कंठ में संपूर्ण रामायण का सस्वर गायन सुनने के बाद राम वाल्मीकि को अपने राजमहल में आमंत्रित करते हैं और उनसे अनुरोध करते हैं कि वे सीता को अपने साथ ले आएँ ताकि वह वरिष्ठ नागरिकों और महान ऋषियों के बीच अपनी पवित्रता को प्रमाणित कर सकें। वाल्मीकि इस आमंत्रण को स्वीकार करते हुए एक महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं कि अपने पतिदेव की अनन्य आराधिका होने के कारण राम की हर अपेक्षा को वह सहर्ष संपन्न करेंगी। अंतत: राजभवन के पूजा-मंडप में वाल्मीकि अपने बारे में जो कहते हैं वह हमारे लिए महर्षि की महनीयता को समझने में अत्यंत उपादेय सिद्ध होता है। वह कहते हैं :

प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघव नंदन।
न स्मराम्यनृतं वाक्यं इमौहि तव पुत्रकौ॥
बहुवर्ष सहस्राणि तपश्चर्या मया कृता।
नोपश्नीयां फलं तस्या दुष्टेयं यदि मैथिली॥
मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम्।
तस्याः फलमुपाश्नीयां अपापा यदि मैथिली॥

(मैं प्रचेतस का दशम पुत्र हूँ और तुम रघुवंश के आनंद नंदन हो। मेरे मुंह से कभी कोई असत्य वचन निकला हो, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। मैं कहता हूँ कि ये दोनों बालक तुम्हारे पुत्र हैं। मैंने हजारों वर्ष गहन तपस्या की है। यदि मैथिली में कोई दोष है तो मैं अपनी सारी तपस्या का फल त्याग दूंगा। मन, कर्म अथवा वचन से मैंने अब तक कोई पाप नहीं किया है। इस विशुद्ध आचरण का फल मैं तभी स्वीकार करता हूँ जब सीता पाप रहित हो।)

इन वाक्यों से पता चलता है कि वाल्मीकि की तपस्या और साधना कितनी गहरी है जिसको आजीवन अपने अध्ययन और मनन का संबल बनाकर उन्होंने एक ऐसे आदर्श नर-नारी के चरित्र का प्रणयन किया है जो मानव मात्र के लिए अवगाहन, आकलन और अनुसरण का आधार बन गया है। महाकवि का यह उद्घोष इस बात को भी प्रमाणित करता है कि राम तथा अन्य ऋषि मुनि कविवर के वाक्य को वेद-वाक्य की तरह स्वतः प्रमाणित मानकर चलते थे। वास्तव में उनकी तपस्या का ही यह आपात और अमूल्य

फल था कि वैदिक स्वर ने उनकी लेखनी में काव्यात्मक अभिव्यंजना का रूप धारण कर रामायण जैसी अमर कृति को जन्म दिया है। वाल्मीकि के व्यक्तित्व की यह छवि हमें उन्हीं के शब्दों में मिलती है जो कि विनीत और विन्यस्त स्वर में उदात्तचेता राम को संबोधित हैं जिनका 'अयन' ही रामायण के प्रणयन की प्रमुख प्रेरणा है।

परन्तु परवर्ती राम-काव्यों में वाल्मीकि के जीवन-चरित्र को लेकर कुछ भिन्न प्रकार के आख्यान मिलते हैं। पुराणों ने वाल्मीकि के प्रारंभिक जीवन का एक ऐसा विरूपित चित्र प्रस्तुत किया है जो कि रोचक और आकर्षक होने पर भी तपस्या के मूर्त रूप वाल्मीकि को सही ढंग से निरूपित नहीं कर सका। वे आराधना के साकार रूप थे और उनकी निष्ठा और मनस्विता का एकमात्र लक्ष्य मानव था—एक ऐसा मानव जो केवल अपने लिए नहीं बल्कि दूसरों के लिए जीता है और अपने को इस विराट विश्व की सामाजिक संस्कृति के साथ एकाकार बना लेता है। महाकवि के जीवन-दर्शन, वैज्ञानिक चिंतन-पद्धति, परिष्कृत सौन्दर्य बोध और परिनिष्ठित काव्य-कौशल से संपन्न इस ऋषि तुल्य मनीषी के सम्बंध में यह कहना कि ये अपने प्रारंभिक जीवन में डाकू थे और बाद में सप्तर्षियों ने उनको तपस्वी के रूप में बदल दिया सुनने में उत्तेजक प्रतीत हो सकता है, पर इसके समर्थन में कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है। किन्तु पद्म पुराण, स्कंद पुराण और अध्यात्म रामायण सहित अनेक पुराणों ने इसी वृत्तांत को प्रचालित किया और आज सामान्य जन-समाज में वाल्मीकि का यही रूप प्रतिष्ठित हो गया है।

'वाल्मीकि' शब्द का वाच्यार्थ है—बॉबी जो कि ध्यान, समाधि और तपस्या का द्योतक होता है। कवि वाल्मीकि इसी तपस्या के परिणत रूप हैं। वाल्मीकि के प्रबल प्रशंसक कालिदास अपनी कृति 'मेघ संदेश' में वाल्मीकि की इसी विशिष्टता की ओर मार्मिक संकेत करते हुए यक्ष से अपने संदेश वाहक मेघ को कहलवाते हैं :

''वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनु: खण्डमारवम्डलस्य''

बॉबी के अग्रभाग से उठकर फैलनेवाले उस धनुप-खंड की ओर अपनी दृष्टि अवश्य प्रसारित करना जो कि आखण्डल अर्थात् इन्द्र का बनाया हुआ है। स्पष्ट ही, यह इंद्रधनुष वाल्मीकि की काव्य-दृष्टि और महाकाव्य वैभव का ही आलंकारिक रूप है। इंद्रधनुष की सतरंगी शोभा में कालिदास ने वाल्मीकि रामायण के सात कांडों की छवि ही देखी है।

परन्तु पुराणों का अपना पक्ष है और उसका समर्थन करने का अपना ढंग है। राम-नाम की महिमा का वर्णन करना उनका प्रमुख उद्देश्य है जिसका जण करने से डाकू भी संत बन सकता है। यह सही तो हो सकता है, पर इससे भी महत्त्वपूर्ण बात है वाल्मीकि को तपस्या के मूर्त रूप में समझना। वाल्मीकि रामायण का प्रथम श्लोक ही वाल्मीकि को तपस्वी के रूप में प्रतिपादित करता है। तपस्या उनका प्रधान लक्षण है जबकि देवर्षि नारद ने अपनी निरंतर लोकयात्रा और नैष्ठिक स्वाध्याय के माध्यम से लोकज्ञता का अतिरिक्त गुण भी अर्जित किया है। मानव-स्वभाव के इसी गहन अध्ययन

को यहाँ पर स्वाध्याय की संज्ञा दी गई है और इसी ने नारद को वाणी के मर्मज्ञों में वरिष्ठ और मौन-साधना में श्रेष्ठ सिद्ध किया है। इन्हीं के बल पर वे उस 'नर' को पहचान सके जिनका 'अयन' (अभियान) मानवता को मंगलमय और महिमान्वित बना सकता है।

कुछ लोग कहते हैं कि 'वाल्मीकि' के नाम से दो तीन व्यक्ति प्रचलित थे। इनमें से कौन आदिकवि वाल्मीकि थे और कौन आजकल 'रामायण' के रूप में लोकप्रिय कृति के प्रणेता थे, यह अभी निश्चित नहीं है। किन्तु आम पाठक के लिए इतना समझना पर्याप्त है कि वाल्मीकि की कृति के रूप में आजकल जो 'रामायण' उपलब्ध है, वही आदिकवि वाल्मीकि का आदिकाव्य 'रामायण' है क्योंकि आम आदमी के लिए यही काव्य आलोक और आनंद के अक्षय स्रोत का काम देता रहा, सुधी जनों के लिए इसी में विवेक की वाणी सुनाई देती रही, समाज के लिए यही नीति-संहिता बनकर मार्गदर्शन करती रही, रचना कर्मियों और विद्वानों के लिए यह काव्य-साधना का मेरूदंड प्रस्तुत करता रहा तथा साधकों और द्रष्टाओं के लिए यह ज्ञान का प्रकाश-पुंज बना रहा।

वाल्मीकि के जीवन-काल और 'रामायण' के रचनाकाल के सम्बंध में विभिन्न मत हैं। पिछले सौ वर्षों से देश-विदेश के विद्वानों का ध्यान वाल्मीकि के काल-निर्णय पर बराबर आकृष्ट होता रहा और इस पर गंभीर चिंतन भी हुआ। डॉ. एच. जाकोबी का मत है कि वाल्मीकि का समय भगवान बुद्ध से पहले का है और इसे वे ईसा पूर्व आठवीं शताब्दी से पहले रखना चाहते हैं। डब्लयू. स्केगेल इसको ई. पू. ग्यारहवीं शताब्दी तक ले जाते हैं। इसके विपरीत ए. बैबर और जी.टी. व्हीलर इनको ईसा के पश्चात बताते हैं। भारत के पुरातत्व विभाग ने वाल्मीकीय रामायण में उल्लिखित अयोध्या, नंदिग्राम तथा अन्य स्थानों में हाल ही में खुदाई का जो कार्य कराया है, इससे पता चलता है कि ये सभी स्थान एक दूसरे से मेल खाते हैं और इनका समय ई. पू. सातवीं शताब्दी है। लोकमान्य तिलक तथा अन्य भारतीय विद्वान वाल्मीकि को पाश्चात्य विद्वानों के बताए रामय से काफी पूर्व मानते हैं। वाल्मीकि के प्रामाणिक विद्वान श्री जी. एस. अट्लेकर (1895-1987) इस सम्बंध में विद्वानों द्वारा प्रमाणीकृत लगभग सभी विचारों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करने के पश्चात विश्वास के साथ अपना निष्कर्ष स्पष्ट शब्दों में घोषित करते हुए कहते हैं कि वाल्मीकि की प्रमाणिक 'रामायण' की रचना ईसा से पूर्व प्रथम सहस्राब्दी के बाद की नहीं हो सकती है।

वाल्मीकि का समय चाहे कुछ भी हो, वास्तविकता यह है कि उन्होंने अपनी कालजयी कृति 'रामायण' की रचना के माध्यम से समय की सभी सीमाओं को पार कर लिया है। ईसा से पूर्व पहली शताब्दी के अश्वघोष अपनी कृति 'बुद्धचरित' में वाल्मीकि की प्रथम काव्याभिव्यंजना का प्रशंसात्मक उल्लेख करते हुए लिखते हैं :

वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं
जग्रंथ यन्न च्यवनो महर्षिः।

इससे पता चलता है कि वाल्मीकि न केवल ईसवीं सन् से पूर्व के थे, बल्कि उनका प्रथम श्लोक 'मा निषाद' परवर्ती कवियों में सार्वत्रिक लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है और यह भी स्पष्ट होता है कि और भी अनेक ऋषियों ने इस प्रकार की अनुभूति को महाकाव्योंचित अभिव्यक्ति नहीं दे सके। संभवत: इस ऐतिहासिक घटना के लिए समय-देवता ने उनको चुन लिया था और उनको इसके लिए स्वयं सृष्टिकर्ता का यह आशीर्वाद मिला था कि सत्य और कर्म की गवेषणा के लिए समर्पित राम के अयन (रामायण) की यह कथा तब तक संसार में संचारित रहेगी जब तक पहाड़ों में स्थिरता और नदियों में गतिशीलता बनी रहेगी ताकि यह वसुंधरा जीने और जीवन का आनंद लेने योग्य हो।

यावत् स्थास्यंति गिरय: सरितश्च महीतले।
तावद् रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥

2

महाकवि का महामानव

आदिकवि की आर्षदृष्टि ने जिस मानव की परिकल्पना की है, उसमें आदर्श मानवता और अंतरंग दिव्यता का प्रसन्न और दुर्लभ संयोग दृष्टिगोचर होता है। राम को भगवान या अवतार के रूप में निरूपित करना तत्वदर्शी कवि का आशय नहीं था। तत्वत: वे एक ऐसे आदर्श मानव की तलाश कर रहे थे जो मर्यादा के मानक, श्रेष्ठता के प्रतिदर्श तथा सत्य और धर्म के साकार रूप हों। वाल्मीकि जिस मानव की रूपकल्पना में लगे हुए थे, बिल्कुल उसी प्रकार के आदर्श मानव अथवा 'नर' का उदाहरण देवर्षि नारद प्रस्तुत करते हैं। इस में 'नर' या मानव शब्द रेखांकित है। वह नर केवल मानव है और सही माने में मानव है।

वाल्मीकि अपनी जिज्ञासा या परिपृच्छा में सबसे पहले जिस गुण का उल्लेख करते हैं, वह है—गुणवान्। इसका शाब्दिक अर्थ होता है—अच्छे गुणों से संपन्न। परन्तु शब्द की व्युत्पति की दृष्टि से देखा जाए तो इसका अर्थ होता है—जो अपने को गुणित करने अथवा अपने तक सीमित न रहकर अनेक या संभव हो तो सबके साथ जोड़ने का स्वभाव, दूसरे शब्दों में, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय जीवन यापन करने की लोकहितकारी प्रवृत्ति से संपन्न हो।

दोनों मनीषियों ने जिस महामानव को जानने और पहचानने का सफल प्रयास किया है, वही इक्ष्वाकुवंश के शिरोरत्न राम थे जिनके शारीरिक सौष्ठव, बौद्धिक चिद्विलास और विश्व के कण-कण में दिव्यत्व को पहचानने की आध्यात्मिक चेतना का मंजुल सामंजस्य है। अजेय पराक्रम, पारदर्शी पर्यवेक्षण, ज्ञान की प्रमेय तथा अप्रमेय सभी शाखाओं पर सम्पूर्ण अधिकार, संतुलित मनोवृत्ति, जीव मात्र पर दया, प्रतिपक्षियों के प्रति भी सहिष्णुता, लोक मंगल की साधना के लिए अपनी सुख-सुविधा की परवाह किए बिना किसी भी चुनौती को स्वीकार करने के लिए तैयार रहना और गुरूजनों के प्रति आदर और सत्कार की भावना—कुछ ऐसे गुण हैं जिनको नारद ने राम में देखा है।

दोनों ऋषियों की आर्षदृष्टि का प्रमाण रामायण के नामकरण में ही प्रकट होता है। राम का अयन ही रामायण है। रामायण केवल राम की कथ उनकी जीवन-चरित नहीं है। राम कैसे चलते हैं, कैसे बोलते हैं, उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया कैसी होती

है, अपने सगे-सम्बंधियों, साधु-संतों, मित्रों और शत्रुओं के प्रति उनका व्यवहार कैसा होता है, पार्थिव, अपार्थिव बाह्य-अभ्यंतर, दिव्य और भव्य आदि को वे किस दृष्टि से देखते हैं—इन सब का जीता जागता चित्र 'रामायण' में मिलता है। उनका अयन मानव मूल्यों की गवेषणा के लिए संपन्न अभियान है। यह एक ऐसी मानवता है जिसको देखकर देवता भी विस्मित होकर सोचने लगते हैं कि मानव-हृदय कितनी सुंदर कलाकृति है। उनको अपनी मानवता पर गर्व होता है और मानव के रूप में ही अपनी पहचान बनाए रखना चाहते हैं। सीता की अग्निपरीक्षा के तुरन्त बाद राम अपने को दशरथ नंदन राम और अन्य किसी भी मनुष्य के समान सामान्य मानव घोषित करते हैं। उनकी यह सहज सात्विक विनम्रता उनको 'परिपूर्ण' मानव बना देती है।

वाल्मीकि अपने महाकाव्य में अपने काव्य-नायक राम को संसार में सर्वश्रेष्ठ गुण-सत्य के लिए सर्वात्मना समर्पित सत्यसंध राजा दशरथ के वरद पुत्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं। ध्यान देने की बात है कि जिस सर्ग में वाल्मीकि अपने नायक के शुभोदय का वर्णन करते हैं, उसी सर्ग में वे विश्वामित्र का भी प्रवेश कराते हैं। यह इस बात को दर्शाने के लिए किया जाता है कि राम का जन्म केवल माता-पिता और अयोध्या के नागरिकों के मनोरंजन के लिए नहीं हुआ है, बल्कि विशाल जन-समुदाय को अपने साथ ले चलने और उनके दुख-दर्द को मिटाकर मानव मात्र की सेवा करने के लिए हुआ है। अपनी आध्यात्मिक अंतश्चेतना के बल पर व्यक्तियों की वैयक्तिक विशिष्टता को पहचानने में प्रवीण विश्वामित्र मारीच और सुबाहु नाम के राक्षसों से अपने यज्ञ की रक्षा करवाने के लिए राम को अपने साथ ले जाने आए हैं। पर यह बात जब वे राजा दशरथ को कहते हैं तो राजा अपने पुत्र-प्रेम के कारण अपने प्राणों से भी प्रिय राम को इस गुरूतर दायित्व को निभाने भेजना नहीं चाहते हैं और कहते हैं कि मेरा बेटा सोलह साल का भी नहीं है और इतना बड़ा काम वह नहीं कर पाएगा। इस पर विश्वामित्र उनको समझाते हैं कि उनका बेटा राम वास्तव में महात्मा हैं और सत्यनिष्ठा ही उनका वास्तविक पराक्रम है। इस सम्बंध में राजपुरोहित वशिष्ठ से भी परामर्श करने का सुझाव देते हुए मुनिपुंगव कहते हैं कि तपस्या में निष्णात वशिष्ठ भी जानते हैं कि राम सत्व-संपन्न और कारण-जन्मा पुरूष हैं जो देवताओं के अभीष्ट कार्य को संपन्न करने के लिए जन्मे हैं। इस पर वशिष्ठ राजा को समझाते हैं कि विश्वामित्र अपने लिए कुछ सहायता मांगने नहीं आए हैं, बल्कि उनको, उनके पुत्र को और उनके माध्यम से समस्त संसार को लाभ पहुँचाने आए हैं। वशिष्ठ की यह बात सुनते ही राजा आश्वस्त होकर विश्वामित्र के प्रस्ताव को स्वीकार करते है। इसी से इश्वाकु वंश के कर्मनिष्ठ और धर्मनिष्ठ राजकुमार राम के वास्तविक 'अयन' का आरंभ होता है। राम के साथ उनके अनुज लक्ष्मण भी चलते हैं क्योंकि वे दोनों निरंतर एक साथ रहते हैं। राम के बिना लक्ष्मण सांस नहीं ले सकते और लक्ष्मण के बिना राम को नींद तक नहीं आती।

लक्ष्मणो लक्ष्मिसंपन्नो बहिः प्राण इवापरः।
न च तेन विना निद्रां लभते पुरूषोत्तमः॥

दोनों राजकुमार धनुर्विद्या और अस्त्र-विद्या में पहले से ही निष्णात हैं। इसलिए नियत कार्य का निर्वाह करने की अपनी क्षमता पर उनको पूरा विश्वास है और विश्वामित्र जैसे अस्त्रविद् और तत्ववेत्ता के सान्निध्य और मार्गदर्शन में वे और भी अधिक आनंद का अनुभव कर रहे थे। अयोध्या नगरी की सीमा को पार करते ही विश्वामित्र राम को अपने पास बिठाकर बला और अतिबला नाम की दो विद्याओं में दीक्षित कर देते हैं जिनके प्रभाव से उनको पूर्ण रूप से अनुरक्षा और प्रतिरक्षा प्राप्त होती है। इसके बाद ताटका नाम की राक्षसी के वध के कार्य में राम को नियोजित किया जाता है।

प्रारंभ में स्त्री का वध करने में तनिक संकोच होने के कारण थोड़ा-सा विलंब अवश्य होता है, पर कार्य-निष्पादन के औचित्य के बारे में समाधान कर लेने के बाद मुनि के आदेश का पालन कुछ ही क्षणों में संपन्न हो जाता है। अपने शिष्य की निसर्ग क्षमता पर प्रसन्न होकर विश्वामित्र राम को कुछ अधिक शक्तिशाली अस्त्रों से संपन्न बना देते हैं। इस प्रकार यज्ञ की रक्षा करने के लिए पूर्ण रूप से सक्षम होकर दोनों राजकुमार छह रातें आश्रम में जागरण करते हैं। राम इस बात पर विशेष ध्यान देते हैं कि आतंककारी राक्षसों को न्याय सम्मत और संतुलित दंड दिया जाए। सुबाहु के प्राणों का हरण किया जाता है और मारीच को जान से बचाकर दूर के समुद्र में प्रेषित किया जाता है। इस प्रकार राम अपने दायित्व का पालन अद्भुत रूप से संपन्न कर देते हैं।

विश्वामित्र ने राम को केवल दस दिन के लिए अपने साथ चाहा था और यह अवधि अब समाप्त हो चुकी है। परन्तु विश्वामित्र के तपोवन 'सिद्धाश्रम' के निवासी एक प्रस्ताव रखते हैं कि दोनों राजकुमार मिथिला भी जाकर वहाँ पर राजा जनक द्वारा संपन्न हो रहे एक विशेष यज्ञ को भी देखें। अपनी पुत्री के लिए योग्य वर को प्राप्त करने के लिए राजा जनक यह यज्ञ कर रहे थे। कन्या को पाणिग्रहण में प्राप्त करने के लिए भगवान शिव द्वारा प्रदत्त एक धनुष का पूरण करने की क्षमता आवश्यक है। इस प्रस्ताव से राजकुमारों के प्रवास की अवधि बढ़ जाती है। रोचक बात यह है कि राजकुमारों को मिथिला ले चलने का प्रस्ताव आश्रमवासियों की ओर से मिलता है। विश्वामित्र इसमें कोई पहल नहीं करते, केवल प्रस्ताव की मौन स्वीकृति में 'हा' भरते हैं। इससे भी आश्चर्य की बात यह है कि राजकुमार भी केवल गुरूजनों के संकेत पर यात्रा के लिए तैयार हो जाते हैं। अपने आप अनायास प्राप्त अवसर को निर्लिप्त भाव से उसी रूप में स्वीकार करने में उनके सहज उल्लास का प्रमाण मिलता है। उनकी अपनी ओर से कोई विशेष उत्सुकता नहीं दिखाई देती। इस प्रकार ईश्वर की इच्छा से जो कुछ होता है, उसको उसी रूप में स्वीकार करने की इस प्रवृत्ति को वाल्मीकि बहुधा 'यदृच्छा' कहा करते हैं। जब तक हम सही मार्ग पर चलते हुए सही काम सही समय पर सही ढंग से करते रहेंगे तब तक जो कुछ होता है, वह हमारे और सबके भले के लिए होगा, यही धारणा संस्कार-पुरूष राम के जीवन-दर्शन की मूल शक्ति प्रतीत होती है।

प्रारंभ के केवल दस दिन के लिए विश्वामित्र के साथ चल पड़े राम पूरे चौबीस दिन उनके साहचर्य का आनंद लेते हैं। ध्यान देने की बात है कि गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षर हैं और विश्वामित्र स्वयं गायत्री मंत्र के द्रष्टा हैं। चौबीसवें दिन जब राम का विवाह संपन्न होता है तो अगले दिन प्रात:काल ही विश्वामित्र उत्तर पर्वत पर स्थित अपने निवास की ओर प्रस्थान करते हैं।

विश्वामित्र के साथ राम के प्रवास के समय की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है—अहल्या का शाप विमोचन जोकि सीता और राम के समागम से कुछ ही समय पूर्व घटती है। इस घटना के महत्व का पता तब चलता है जब राजा जनक के कुल-पुरोहित और अहल्या के पुत्र शतानंद मिथिला में विश्वामित्र को देखते ही इस सम्बंध में जिज्ञासा प्रकट करते हैं और विश्वामित्र बहुत ही संक्षिप्त और सांकेतिक भाषा में इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि जो करना था, वह किया जा चुका है। इससे स्पष्ट होता है कि राम के इस प्रवास की प्रत्येक घटना पहले से आयोजित थी और विश्वामित्र ने राम के समग्र 'अयन' का एक सुनिश्चित कार्यक्रम बना रखा था।

वाल्मीकि के अनुसार, अहल्या पत्थर नहीं बनी थी। महर्षि गौतम ने अपने शाप में केवल इतना ही कहा था कि वह अनिश्चित समय तक, जब तक राम के दर्शन नहीं होंगे—अदृश्य पड़ी रहेगी। इसलिए इस शाप की सारी अवधि उनके लिए तपस्या का समय था जब वह निराहार केवल हवा का सेवन करते हुए धरती पर भस्मराशि की भाँति सोई पड़ी थी। और श्रीराम के चरणों की सातुर प्रतीक्षा कर रही थीं। अंतत: एक सुप्रभात की सुमधुर घड़ी में राम का पदार्पण होता है और तुरन्त वासना की धूल मे दबी हुई सौन्दर्य राशि अपनी खोई हुई शोभा को पुन: प्राप्त करती है और प्राक्तन रूप में फिर से प्रकट होती है। यह सब राम के दर्शन मात्र से होता है क्योंकि वे प्रेम के मूर्त रूप हैं। जहाँ राम है, वहाँ प्रेम है। वहाँ पर वासना या लालसा के लिए कोई स्थान ही नहीं है। केवल ऐसा ही व्यक्ति जनक की पावन तनया जानकी का योग्यवर बन सकता है। इसी प्रयोजन से वाल्मीकि ने अहल्या के प्रसंग को सीता-राम के परिणय के पूर्वरंग के रूप में प्रस्तुत किया है। जानकी और दाशरथी का मिलन, धरती और आकाश का, क्षमा और प्रकाश का, सहन और तपस्या का और सौन्दर्य तथा सत्य का समागम है।

सीता-राम के पाणिग्रहण संस्कार तथा पारस्परिक अनुराग का वर्णन वाल्मीकि अत्यंत संक्षिप्त, किन्तु सार्थक और सारगर्भित शैली में करते हैं। उनके हृदय-युगल की भाषा को कवि का आर्ष हृदय मर्यादित और मार्मिक अभिव्यंजना में रूपांतरित कर प्रस्तुत करता है। इस प्रसंग में वाल्मीकि एक महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं। उनका कहना है कि राम के मन में सीता के प्रति अपार प्रेम है और उनके हृदय की वह अधिष्ठात्री है; पर इसका मुख्य कारण है कि उनके पिता ने उनके लिए इस कन्या का वरण किया है।

रामायण के अयोध्या-कांड में राम का व्यक्तित्व एक गुणी जनक के गुणवत्तर पुत्र के रूप में पूर्ण रूप से उभर कर आता है। इस कांड का आरंभ ही राम के दुर्लभ गुणों के संकीर्तन से होता है। राम केवल इन गुणों के सहज अधिकारी ही नहीं, बल्कि सतत अभ्यासी भी हैं। गुणगान की यह पुनरूक्ति परिवार में और पौरजनों में उनकी लोकप्रियता को उजागर करने के लिए हुई है। बहुत कम समय में ही नयनाभिराम राम लोकाभिराम राम बन जाते हैं। घर में छोटे बड़े सबका वे मन बहलाते हैं, नागरिकों से वे खुले दिल से मिलते हैं, सामाजिक उत्सव और उल्लासमय पर्व-त्यौहारों में वे उनके सहभागी बनकर चलते हैं, किसी के उकसाने पर भी वे कभी किसी से नाराज़ नहीं होते, प्रथम मिलन में ही वे लोगों को अपने मित्र बना लेते हैं और उनके मित्र भी यह अनुभव करते हैं कि उनको एक उत्तम मित्र मिल गया है, दीन-दुखियों की सहायता करने के लिए वे निरंतर तत्पर रहते हैं चाहे कोई ऐसी सहायता मागे या नहीं, जहाँ भी किसी संघर्ष या समर में जाते हैं, निरपवाद रूप से विजयी बनकर ही लौटते हैं और इन विजय यात्राओं का एकमात्र उद्देश्य लोक कल्याण, शांति-स्थापना, सद्भावना का संवर्धन तथा धनी एवं निर्धन दोनों की समान रूप से सुख-समृद्धि होता है।

राम के इन प्रशस्त गुणों से प्रेरित जनता और जननायकों के मन में यह इच्छा पैदा होती है कि राज्य का भार राम स्वयं संभाल लें। राजा दशरथ के लिए तो इससे बढ़कर कोई प्रसन्नता की बात नहीं हो सकती कि उनका ज्येष्ठ और सभी गुणों में श्रेष्ठ पुत्र उनका उत्तराधिकारी बने। जब वे अपने प्रमुखों के सम्मुख यह प्रस्ताव रखते हैं तो वे हृदय से इसका स्वागत करते हैं। राजतिलक का दिन तत्काल निश्चित हो जाता है। यह विचार राम के जन्म दिन और उनके जन्म नक्षत्र के दिन उत्पन्न होता है और अगला दिन ही राजतिलक के लिए निर्धारित किया जाता है।

इस पर राम की प्रतिक्रिया देखने लायक है। जब उनके पिता उनके सामने यह प्रस्ताव रखते हैं, वे तनिक भी उत्सुक या उत्तेजित दिखाई नहीं देते, जैसा कि उनका स्वभाव है। किन्तु पिता के प्रति आदर और सम्मान के कारण वे उनके पैर छूते हैं और प्रेमसहित कर्तव्य भावना से प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं। अपनी माता को यह समाचार सुनाते समय भी वे इसी मनोवृत्ति का परिचय देते हुए उनसे कहते हैं कि पिताजी ने उनको प्रजा का पालन करने का दायित्व (प्रजापालनकर्मणि) सौंपा है। जहाँ तक पद-प्रतिष्ठा की भावना का सम्बंध है, वे एकदम इससे असंसक्त आनंद का अनुभव करते हैं। यदि ऐसी कोई भावना हो तो भी वे अपनी माता, पत्नी और भाईयों के हित में ही इसका स्वागत करते हैं। अगले दिन प्रातःकाल जब स्थिति एकदम विपरीत रूप धारण करती है और उनको सिंहासन पर बैठने के स्थान पर वनवास के लिए प्रस्थान करने को कहा जाता है तो भी वे एकदम अव्यग्र दिखाई देते हैं और अपनी सौतेली माँ के वाक्य को पितृवाक्य के समान सम्मान देकर स्वीकार करते हैं। घटना-क्रम का यह आमूल परिवर्तन सारे परिवार और राज्य को विचलित कर देता है। किन्तु राम

नियति की चुनौती को अत्यंत शालीनता, गरिमा और उच्चतर जीवन मूल्यों के प्रति निष्ठा के साथ स्वीकार करते हैं। वे अपनी माँ कैकेयी से कहते हैं कि वे तत्काल वन जाने को तैयार हैं और वस्तुत: पिताजी को प्रसन्न बनाने के लिए वे सब कुछ करने को तैयार हैं। कैकेयी के कठोर व्यवहार से अत्यंत व्याकुल होकर दशरथ चाहते हैं कि भरत के अपने मामा के घर से आने तक राम रूक जाएँ। इस पर कैकेयी घबराहट महसूस करती है कि कहीं इस प्रकार का कोई विलंब उनकी योजना को विफल न बना दे।

इस अवसर पर राम अपनी सौतेली माँ को आश्वस्त करने के लिए अत्यंत रोमांचक बात कहते हैं। वे कहते हैं कि अर्थ और अधिकार में उनकी तनिक भी आसक्ति नहीं है, बल्कि वास्तविकता यह है कि उनकी सारी दृष्टि व्यापक लोकभावना की ओर है जिस को आवासित करने के लिए उनका मन लालायित हो रहा है क्योंकि वनवासी ऋषि-मुनियों के साहचर्य में रहकर विमलधर्म का पालन और सेवन करना ही उनका अभीष्ट है। वे कहते हैं :

नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे।
विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममाश्रितम्॥

ऐसा लगता है कि राम ये शब्द केवल कैकेयी को नहीं, बल्कि सारे विश्व को संबोधित कर रहे हैं। अपने वचन के प्रारंभिक शब्द 'नाहं' पर विशेष बल देते हुए वे कह रहे हैं कि मेरा कार्य-क्षेत्र केवल 'अहम्' तक सीमित नहीं है, बल्कि समस्त 'लोक' मेरे आवास के अंतर्गत आता है। ये उदगार वाल्मीकि के मानव को अयोध्या के राजकुमार के स्तर से ऊपर उठाकर जनता के जनार्दन की भूमिका पर पहुँचाते हैं। वे विश्व-मानव हैं और विश्व इसी मानव का है। जब राम कैकेयी से कहते हैं कि उनके हल्के से इशारे पर वह वनवास को सहर्ष स्वीकार कर सकते थे और इतनी-सी बात के लिए पिताजी के औपचारिक आदेश की कोई आवश्यकता नहीं थी, तब राम की उदारता उदात्त स्वर में मुखरित होती है। इन शब्दों के साथ राम कैकेयी और दशरथ के चरणों पर नत-मस्तक होकर उनसे विदा लेते हैं और फिर अपनी माँ कौसल्या से विदा लेने चल पड़ते हैं। रास्ते में उनके राजतिलक के महोत्सव की सोल्लास प्रतीक्षा करनेवाले नागरिकों का अभिवादन स्वीकार करते समय उनके चेहरे पर तनिक भी इस बात का आभास नहीं मिलता है कि सारी योजना की काया पलट गई है।

माँ कौसल्या और भाई लक्ष्मण गतिविधियों के इस अप्रत्याशित व्यतिक्रम को देखकर विक्षुब्ध हो जाते हैं। लक्ष्मण तो राजशासन के विरूद्ध खुला विद्रोह खड़ा करने तक की बात सोचते हैं और जोरदार शब्दों में कहते हैं कि राम सिंहासन के वैध उत्तराधिकारी हैं और उनके साथ जो घोर अन्याय हो रहा है, उसका डटकर सामना करना चाहिए। परन्तु स्थितप्रज्ञ राम अपने निर्णय पर डटे रहते हैं और दोनों को कुशलता से समझाते हैं कि पिताजी की विवशता को सही ढंग से समझना चाहिए और राजपरिवार

में किसी की भावना को ठेस पहुँचाएं बिना निर्वासन का हृदयपूर्वक स्वागत करना चाहिए। परिवार तथा राज्य में औचित्य और मर्यादा की किसी प्रकार से अवहेलना न हो और जीवन के बुनियादी मूल्य-सत्य और धर्म-सुस्थिर बने रहें, इसी उद्देश्य से राम इतना बड़ा निर्णय करते हैं। यह सही है कि कैकेयी ने सत्य और धर्म दोनों के बीच जटिल संघर्ष पैदा तो किया है; परन्तु राम ने तत्काल अपने मन को एक महान् त्याग के लिए तैयार कर लिया जिस से क्षण-भर में सारी समस्या का समाधान हो गया। यही उस क्षण की माँग और अपेक्षा थी।

उदारमना राम का यह दृढ़ निश्चय पलभर में सारे राज्य को आघात पहुँचाता है और सारी अयोध्या राम के साथ बन जाने को तैयारी हो जाती है। बहुत समझाने पर और मना करने पर भी सीता और लक्ष्मण राम को छोड़कर घर बैठे रहने से साफ इंकार कर देते हैं। राम को अकेले वन जाने देने की बात वे सोच तक नहीं कर पाते। अंतत: राम को उन दोनों को अपने साथ ले जाना ही पड़ता है। गुरूदेव वसिष्ठ मुक्त कंठ से घोषित कर देते हैं कि सारी नगरी वनवास की प्रस्थान-त्रयी (राम, सीता और लक्ष्मण) के साथ चल पड़ेगी क्योंकि राम के बिना राष्ट्र की बात सोचना ही संभव नहीं है। उनकी दृष्टि में राष्ट्र वहीं है जहाँ राम हैं चाहे वह वन हो या नगर हो। याज्ञिक और दार्शनिक समाज तमसा नदी के तट तक राम के साथ चलता है जहाँ पर राम रात के विश्राम के लिए रूक जाते हैं। सुमंत्र के रथ के घोड़े गंगा के तट पर राम को छोड़ने के बाद लौट आने से इंकार कर देते हैं। घर पर माता-पिता की दयनीय दशा सहनशीलता की सारी सीमाओं को पार कर जाती है। दशरथ की दृष्टि राम के साथ ही चली जाती है और फिर लौटकर नहीं आती। ये सारी घटनाएं महर्षि वाल्मीकि के महाकाव्य-दर्शन को उद्‌घाटित करती हैं जिन्होंने अपने काव्य-नायक को आदर्श मानव के समस्त गुणों के मूर्त-रूप बनाकर यह साबित किया है कि उनकी मानवता दिव्यत्व से भी बढ़कर है।

चित्रकूट का दृश्य इस महामानव को और भी उदात्त भाव-भूमिका पर प्रतिष्ठित करता है जहाँ पर भाव-संतुलन और स्थितपज्ञता उनकी मानवता को महिमान्वित बनाती है। मानव-मन के कुशल शब्द-शिल्पी वाल्मीकि राम और भरत दोनों के चरित्रों को इतना समतुल्य बनाते हैं कि यह कहना कठिन होता है कि कौन किस से किस रूप में श्रेष्ठ है। दोनों भाई धर्म के पक्षधर बनकर सत्य की प्रतिष्ठा का समर्थन करते हैं और दोनों अपने-अपने ढंग से इस बात का आग्रह करते हैं कि कुल मर्यादा और लोकहित की अवहेलना के कारण अभीष्ट आचरण में जो अतिक्रम हुआ है, उसका सन्मति से परिमार्जन किया जाए। परन्तु दोनों में से कोई भी दोनों के लिए सम्मत किसी निष्कर्ष पर पहुँच नहीं पाते हैं और न भी वे एक दूसरे से स्पष्ट रूप से असहमत होना चाहते हैं। अंतत: राम एक ऐसे समीकरण का आविष्कार करते हैं जिससे सत्य ओर धर्म दोनों की अपेक्षाओं का अद्‌भुत पालन संभव प्रतीत होता है। उनका कथन है 'चलो, हम

दोनों राज्य के दो अलग-अलग क्षेत्रों का कार्यभर संभाल लें। मैं अयोध्या से बाहर नाना प्रकार के मृग-मृगेन्द्रों का पालन करते हुए विशाल वनभूमि का राजाधिराज बनूँगा और तुम अयोध्या का नरेश बनकर मानव मूल्यों का संवर्द्धन करते हुए मानव जाति का कल्याण करो।' परन्तु भरत का मन इससे संतुष्ट नहीं हो पाता। वे अपने भाई से निवेदन करते हैं कि चौदह वर्ष तक जब तक राम वनवास की दीक्षा का पालन कर अयोध्या वापस नहीं आते हैं, तब तक वे केवल उनके न्यासी के रूप में राज-काज संभालते रहेंगे। राम के श्रीचरणों से पवित्र बनाई गई स्वर्ण पादुकाओं को वे अपने साथ अयोध्या ले जाते हैं और उन्हीं को राज-सिहासन पर प्रतिष्ठित कर अपना सारा शासन-कार्य उन्हीं पादुकाओं की ओर से चलाते हैं। इस प्रकार दोनों भाई स्वामित्व की भावना से दूर रहकर अपने-अपने नियत कार्य केवल दायित्व की भावना से संपन्न करते रहने के लिए सहमत होकर समस्या का समाधान कर लेते हैं। यही चित्रकूट के शिखर-सम्मेलन की सबसे बड़ी उपलब्धि है जिस को महामेधावी वाल्मीकि बड़ी कुशलता से निभाते हैं।

राम के अयन का तीसरा चरण विराध के प्रसंग से प्रारंभ होता है। सीता, राम और लक्ष्मण की त्रयी को देखकर विराध विस्मय और चुनौती के स्वर में उनसे कहता है कि यह तापस वेष और साथ में यह परम सुंदरी ? जब राम अपनी स्थिति समझाने लगते हैं तो बीच में ही विराध सीता को अपनी गोद में बिठाकर चल पड़ता है और दोनों राजकुमारों से प्राण बचाकर भाग जाने को कहता है। लेकिन जब उन पर अस्त्रों का प्रयोग किया जाता है तो वह सीता को नीचे उतार कर दोनों भाइयों को अपनी बाहों पर बिठाकर भागने लगता है। जब लक्ष्मण उस राक्षस के आतंक से कुछ क्षुब्ध दिखाई देते हैं, तो राम मुस्कुराकर उनको समझा देते हैं कि घबराने की कोई बात नहीं है, इसको अपनी इच्छा से चलने दों, एकदम अनजाने इस नये प्रदेश में रास्ता दिखाने के लिए हमें इनका आभार मानना चाहिए। विराध के अपनाए हुए पथ को अपने लिए हितकारी पथ समझना जीवन की विषमताओं के प्रति राम की समदर्शिता का परिचायक है। परन्तु जब सीता उद्विग्न होकर राक्षस से राजकुमारों को छोड़ने का आग्रह करती हैं तो दोनों भाई राक्षस की दोनों बाहों का विच्छेद कर उनको आगे चलने से रोक देते हैं। तब जाकर उनको पता चलता है कि विचारा यह राक्षस पहले गंधर्व था और शाप-ग्रस्त होकर राक्षस बन गया। अयोध्या के दोनों राजकुमारों की वह प्रतीक्षा कर रहा था क्योंकि उन्हीं से उसको शाप से मुक्ति मिलनी थी। अभिप्रेत महामानव के सोद्दिष्ट अभियान का आरंभ इसी घटना से होता है जिसके पीछे दैवी प्रेरणा और एक व्यवस्थित योजना है। आश्चर्य की बात यह है कि शाप मुक्त होने पर दफन-कर्म से पहले विराध राम को उनका आगे का मार्ग-दर्शन करते हुए कहते हैं कि शरभंग नाम के महर्षि उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं और दंडक-वन में उनकी विजय यात्रा को सार्थक बनाने में यथेष्ट योग देने के लिए भी उत्सुक हैं।

ऐसा लगता है कि दंडकवन में कोदंडधारी राम की यात्रा का प्रत्येक चरण किसी दैवी योजना से पूर्वनिश्चित हो चुका है क्योंकि तपोभूमि दंडक को असुरों के आतंक

से मुक्त करना उनका अभीष्ट था। विराध के उदंत के बाद राम दंडक वन के साधु-संतों और ऋषि मुनियों से मिलकर ध्यान से उनकी करूण गाथा सुनते हैं ओर उनको आश्वासन देते हैं कि सारे इलाके में प्रशांत वातावरण पुनःस्थापित किया जाएगा। शरभंग ओर सुतीक्ष्ण नाम के दो ऋषियों के मार्ग-दर्शन में राम पूरे दस वर्ष की अवधि में समस्त दंडक का सर्वेक्षण करते हैं। उसके बाद अगस्त्य से मिलने पर उनको गोदावरी के तट पर पंचवटी नाम के स्थान पर कुछ समय रहने का परामर्श दिया जाता है। इस अवधि में राम ने अब तक विंध्याचल के उत्तर भाग को असुरों के छुट-पुट आंतक से मुक्त कर दिया है। अब वास्तविक संकट का सामना करने का समय आसन्न हुआ है। महर्षि अगस्त्य को इसका पूरा-पूरा अनुमान था। इसीलिए वे राम को विश्वकर्मा द्वारा विष्णु के लिए बनाया गया दिव्य धनुष और ब्रह्मदत्त नाम का एक आमेघ बाण भी देते हैं। इनके अलावा महर्षि एक खड्ग भी राम को भेंट करते हैं और उनको सलाह देते हैं कि इन सभी हथियारों का सार्थक और सशक्त उपयोग कर वे जनस्थान में प्रच्छन्न रूप से आतंक फैलानेवाले राक्षसों से उस प्रदेश को मुक्त करें और महार्षियों के आश्रमों को पुनर्वासित करें। राम को एक और महत्वपूर्ण ओर मार्मिक परामर्श देते हुए अगस्त्य कहते हैं कि वनवास के समय सीता अपने मन से जो भी कामना व्यक्त करें, उसको अवश्य पूरा किया जाए क्योंकि उन्होंने राज-भवन में सुलभ समस्त सुख-सुविधाओं को त्यागकर अपनी इच्छा से राम के साथ वनवास अपना लिया है। महर्षि राम को इस बात का आश्वासन भी देते हैं कि अपनी धर्मपरायणता और सत्यनिष्ठा के बल पर वे अपने कर्त्तव्य कर्म में अवश्य सफलता प्राप्त करेंगे। इन सब बातों से पता चलता है कि महर्षि अगस्त्य ने अपनी प्रखर दूरदर्शिता से भावी घटनाओं का कितना स्पष्ट अनुमान लगा लिया है और तद्नुसार कुशल कार्य-योजना बनाकर लक्ष्य-सिद्धि को सुनिश्चित कर लिया है। इस प्रकार अयोध्या के राजकुमार सत्यद्रष्टा अगस्त्य से प्रेरणा और सामर्थ्य का संचय कर देव-कार्य के नैष्ठिक निर्वाहक के रूप में पंचवटी की ओर अग्रसर होते हैं।

पंचवटी का प्रवास सुनहरी ऋतु हेमंत की सुहावनी शोभा के साथ प्रारंभ होता है। लक्ष्मण की बातों से पता चलता है कि राम के लिए यह मन-पसंद मौसम है। इक्ष्वाकु वंश का पुराना मित्र जटायु सीता, राम और लक्ष्मण से मिलकर उनकी सेवा और उनकी अनुपस्थिति में सीता की रखवाली करने की अपनी इच्छा प्रकट करता हैं। प्रसन्न गोदावारी के पावन तट पर लक्ष्मण द्वारा बनाई गई छोटी-सी, पर मनोहर पर्णशाला तीनों निवासियों को अयोध्या के आमोद-प्रमोद का स्मरण करती है और साथ ही भरत के त्यागमय जीवन की वे कल्पना करने लगते हैं जिन्होंने राम के वनवास से लौट आने तक केवल उनके प्रतिनिधि के रूप में राजकाज संभालते हुए तापस जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया है। उनकी दिनचर्या का आरंभ गोदावरी में स्नान करने के साथ होता था और उसके बाद पर्णशाला में बैठकर थोड़ी देर के लिए राम के स्फूर्तिदायक वचनों से प्रवर्तित और परिसमाप्त वार्तालाप का आनंद लेते थे। राम की रमणीय वाणी सुनकर

गोदावरी की तरंगें भी पुलकित होती थीं। सारी प्रकृति किसी अगोचर सत्ता के द्वारा परिकल्पित भौतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक संगम की छवि प्रस्तुत किया करती थी।

एक दिन सवेरे शिव, पार्वती और नंदी के समान बैठे हुए राम, सीता और लक्ष्मण के बीच अचानक शूर्पणखा नाम की असुरांगना कहीं से आ टपकती है। यह विचित्र महिला एकदम बेधड़क आश्रम में प्रवेश करती है और तुरंत राम अथवा लक्ष्मण या संभव हो तो दोनों का दिल जीतने और आवश्यक हो तो अपने मार्ग से सीता को हटवाने का अभद्र प्रयास करती है। यह घटना सारे दृश्य को दूषित कर देती है ओर इससे एक नई परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण एक भीषण युद्ध खड़ा हो जाता है। आरंभ में राम केवल विनोद से काम लेते हैं, पर जब वह महिला सीता पर आक्रमण कर उनको नाश्ते की सामग्री बनाना चाहती है तो राम के इशारे पर लक्ष्मण उनके नाक-कान काट देते हैं। तुरन्त वह रोती-बिलखती अपने भाई खर के पास जाकर उसे सारी बात बताती है। देखते ही देखते घमासान लड़ाई शुरू होती है। राम अकेले चौदह हज़ार राक्षसों को अपनी शर-वर्षा का शिकार बना देते हैं। अंततः खर, दूषण और त्रिशिर नाम के तीन प्रमुख भी मारे जाते हैं। यह सारा कांड बहुत ही कम समय में समाप्त होता है और अंतरिक्ष के सारे देवता राम के असाधारण समर-कौशल की सराहना करते हैं। लक्ष्मण मंदहास की मुद्रा में राम का अभिनंदन करते हैं तो साध्वी सीता प्रगाढ़ परिरंभ से अपने पतिदेवता को सम्मानित करती हैं।

किन्तु यह केवल अभिनंदन का अवसर नहीं है, बल्कि यह तो एक प्रारंभ है इससे बड़ी चुनौती के लिए जिसका सामना राम को करना होगा और जिसका फल राक्षसों को भोगना होगा क्योंकि रावण के संरक्षण में जन-स्थान में प्रतिष्ठित असुर-शिविर पलभर में नष्ट हो गया है। इस सारे कांड की सूत्र-धारिणी शूर्पणखा रावण को भी रणभूमि में ले आती है। अपनी बह., शूर्पणखा और सेनानी अकंपन (जनस्थान में बचे हुए केवल दो) से घटना का पूरा विवरण सुनने के बाद रावण राम को सही जवाब देने का निर्णय करते हैं। परंतु इसके लिए वह टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता अपनाता है, सीधे जाकर राम का सामना करने का वह साहस नहीं कर पाता। अंततः वह सीता को अशोक वाटिका में बंदी बनाकर रखने में काम.ाब होता है, पर वह इस बात को समझ नहीं पाता कि इससे उसने अपने राज्य, अपने परिवार और स्वयं अपने प्राणों के सर्वनाश को ही आमंत्रित कर लिया है।

इस विषम परिस्थिति में राम ने जिस स्थैर्य के साथ अपनी भूमिका निभाई है, उससे उनके व्यक्तित्व के अंतरंग की भाव-तरंगिणी का पता चलता है। जिसका विशद चित्रण चरित्र-शिल्पी प्राचेतस प्रस्तुत करते हैं। जब सीता स्वर्ण मृग को सजीव या कम से कम उसकी त्वचा को पाने के लिए अपनी उत्कट कामना व्यक्त करती है तो लक्ष्मण राम को सतर्क करते हुए स्पष्ट कह देते हैं कि यह मृग सचमुच स्वर्ण मृग नहीं हैं, बल्कि आसुरी माया से कल्पित माया-मृग है और इस मायाजाल से हमें सचेत रहना

है। राम भी इस रहस्य को भली-भाँति जानते हैं, किन्तु अगस्त्य के आदेश के अनुसार उनको जानकी की हर मनोकामना को पूरी करना है। उनके लिए कुशाग्र बुद्धि लक्ष्मण की चेतावनी की अपेक्षा महर्षि का वाक्य अधिक महत्व का है। विपक्षियों द्वारा प्रस्तुत चेतावनी का वे धैर्य से स्वागत करते हैं और उनको पूरा विश्वास है कि इससे वास्तविकता अपने आप प्रकट हो जाएगी और सारा माया-जाल स्वत: ही समूल नष्ट हो जाएगा। सीता जैसी परम साध्वी को प्रलोभन में डालनेवाले मायामृग को देखकर वे नक्षत्र मंडल में इस सारे तंत्र को नियंत्रित करनेवाले तारामृग को कल्पना की आँखों से देख लेते हैं। पर्णशाला को छोड़कर जाने से पहले वे लक्ष्मण को सचेत करते हैं कि चारों ओर शंका ही शंका का वातावरण छाया हुआ है और इसलिए उनको विशेष रूप से सावधान रहना है। यहाँ पर लक्ष्मण के साथ-साथ रामायण के प्रत्येक पाठक को चकित करनेवाली बात यह है कि सीता का सात्विक मन इस क्षणिक कामना का शिकार क्यों बना और राम जैसे स्थितप्रज्ञ ने यह भली-भाँति जानते हुए भी कि इस भ्रम का परिणाम अत्यंत भयानक हो सकता है, इस जोखिम को उठाने के लिए अपने को क्यों मनवा लिया। इसका उत्तर राम का आर्जव स्वभाव है। वे गुरू जनों का आदर करने के लिए, सगे सम्बंधियों की सात्विक कामना को पूरी करने के लिए और सत्य एवं धर्म की पताका को उन्नत रखने के लिए जीवन में विषम से विषम परिणामों का सामना करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहते हैं। उनको ईश्वरेच्छा (जिस को वाल्मीकि यदृच्छा कहा करते हैं।) पर प्रबल विश्वास है जो कि जीवन की सभी प्रमुख घटनाओं के पीछे काम करती है। राम के अयन या अभियान में यह सबसे जटिल परीक्षा का समय है और वे साहस, दृढ़ता और स्थिरता के साथ इसका स्वागत करते हैं।

फिर भी, जब इस कदम के भयावह परिणाम सामने आते हैं तो हिमालय के समान धीर-वीर राम अचानक एक सामान्य मानव की तरह नरम दिल बन जाते हैं और अपनी पत्नी के वियोग में साधारण पति के समान रोने बिलखने लगते हैं और सामने दिखाई देने वाले पहाड़ों, पक्षियों, नदियों और फूलों से शोकातुरता में कातरता से पूछने लगते है कि मेरी जानकी का पता मालूम हो तो बता दें। जब रास्ते में खून से लथपथ जटायु दिखाई देता है, तो उनको उस पर भी संदेह होता है कि कहीं इसने विश्वासघात किया है लेकिन जब पता चलता है कि इसी निष्ठावान् पक्षी ने अपने प्राणों की बलि देकर सीता को बचाने का प्रयास किया है तो वे उस पक्षी का दाहसंस्कार बड़ी श्रद्धा से करते हैं जो कि वे अपने पिता के लिए भी नहीं कर सके। अपनी प्रिय-पत्नी की खोज में चलते फिरते समय वे अपने भाई के कंधों पर सिर रखकर सिसक-सिसककर रोने लगते हैं। अपने अभागेपन पर उनको स्वयं दया आती है क्योंकि घर-परिवार से दूर, राज्य से भ्रष्ट और पत्नी से वियुक्त तो हो ही चुके हैं, पर कम से कम उनकी पत्नी और प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों का त्याग करनेवाले इस उदार पक्षी की भी वे रक्षा नहीं कर सके। राम के चरित्र की इस मर्मस्पर्शी मानवता के पीछे

उनके स्रष्टा का करूणा कलित हृदय मुखरित होता है। इसी प्रकार के मानव को वाल्मीकि अपने पाठकों के सामने प्रस्तुत करना चाहते थे ताकि वे हमारे हृदय में घर कर लें और हमारे दुख-दर्द में साथी और साखी बनकर हमें सान्त्वना दे सकें।

दंडक वन में राम की विजय यात्रा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके विरोधी भी अंततः उनके हितकारी सिद्ध होते हैं। दंडक में प्रवेश करते ही विराध राम को आगे का मार्ग दर्शाते हुए शरभंग जैसे महात्माओं से मिलने का परामर्श देते हैं और कहते है कि ये सब उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अरण्यकांड के अंत में, इसी प्रकार कबंध राम को सलाह देते हैं कि वे किष्किंधा जाकर वहाँ पर वानर राज सुग्रीव से मैत्री करें क्योंकि उनको भी राम की सहायता की आवश्यकता है जैसे राम को उनकी। इस प्रकार राम का स्पृहणीय अभियान एक सुनियत योजना के अनुसार सुस्थिर गति से आगे बढ़ने लगता है और अपेक्षित लक्ष्य की सिद्धि में विरोधी और हितैषी जंगली और महात्मा, दानव और देवता तथा नर और वानर समान रूप से सहायक सिद्ध होते हैं। घोर शत्रुओं को परम हितैषियों के रूप में अप्रत्याशित रूप से परिवर्तित होते हुए देख कर स्वयं राम को ही आश्चर्य होता है। राम के शर-स्पर्श से अपने प्राणों का सहर्ष समर्पण करने वाला कबंध परलोकयात्रा के समय राम को आशीर्वाद देता है कि यही आपके अयन का मंगलमय मार्ग है (एष राम शिवः पथा।) राम की विनय की यह पराकाष्ठा है जिसमें दिव्यता और भव्यता का सह-अस्तित्व होता है।

किष्किंधा में जाकर राम की विनम्रता और मानवता अधिक सात्विक बनती है जब वे सुग्रीव से मैत्री की अभ्यर्थना करते हैं। उनको मालूम है कि उनको सुग्रीव की जितनी आवश्यकता है, उससे कहीं अधिक सुग्रीव को उनकी आवश्यकता है। परन्तु उनकी तात्कालिक चिन्ता महत्ता की मात्रा का माप-तौल नहीं है, बल्कि अपने अग्रज वाली के निष्ठुर व्यवहार के कारण राज्य और परिवार के सुख से वंचित सुग्रीव को पुनर्वासित करना है। यहाँ पर वाली का रावण का मित्र होना केवल प्रासंगिक है। अनुभवी नय-विशारद के रूप में राम अपने मित्र सुग्रीव को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि वे सुग्रीव का कार्य पहले करेंगे और आगे का सब कुछ उनकी सुविधा पर निर्भर रहेगा। राम जैसे महान् व्यक्ति का यह उदात्त और उदार स्वभाव सुग्रीव का मनोबल बढ़ाने में सहायक होता है। राजनीतिक दल-बल की सारी समस्या संवाद मात्र से समाप्त हो जाती है। इस प्रसंग में हनुमान की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। समय की गति के साथ वे राम के अधिक से अधिक आत्मीय बनते जाते हैं। प्रथम समागम में ही राम हनुमान को केवल कुछ क्षण के लिए देखकर और उनकी कल्याणी वाणी सुनकर उनकी जन्मजात दिव्यता और दिव्य वर्चस्विता को समझ जाते हैं। वाली को समझने में भी राम को देर नहीं लगती है और बिना उसे देखे ही तय कर लेते हैं कि उसके साथ कैसे व्यवहार करना चाहिए। झुरमुट के पीछे खड़े होकर राम वाली को तीर से मार गिराते हैं तो राम के सदाचार पर वाली द्वारा लांछन लगाया जाता है। किन्तु राम

कायरता से यह काम नहीं करते, खुले दिल से वे अपने शिकार का सामना करते हैं और उनको समझाते हैं कि उन्हें ऐसा क्यों करना पड़ा। असल में उन्होंने तीर भी इस प्रकार मारा जिससे मार खानेवाले की जान तुरन्त न चली जाए। रावण पर जैसा तीर चलाया, वैसा वाली पर नहीं किया! राम की बात विस्तार से सुनकर अपनी गलती समझने और राम को सही मानने के लिए वाली को पर्याप्त समय दिया गया था। अपनी पत्नी और बेटे की भी बातें सुनकर राम के सामने उनकी देखभाल का दायित्व सुग्रीव को सौंपने के लिए उनको यथेष्ट समय मिला था। संतुलित निर्णय तथा योजना बद्ध कार्य-निर्वहण द्वारा राम ने किष्किंधा की शासन व्यवस्था में शांतिपूर्वक न्याय की स्थापना की। सुग्रीव को उनके अग्रज वाली के स्थान पर सिंहासन पर प्रतिष्ठित करने के बाद भी राम ने उनको चार मास का समय दिया था ताकि इस अवधि में वह आवश्यक विश्राम पाकर राम को दिए गए वचन के अनुसार सीता के अन्वेषण का कार्य आरंभ कर सकें। चातुर्मास्य का यह पूरा समय राम अपने भाई लक्ष्मण के साथ प्रस्रवण पर्वत पर प्राकृतिक परिमल का सेवन करते हुए बिताते हैं।

किन्तु निश्चित अवधि के व्यतीत हो जाने पर भी जब सुग्रीव के यहाँ से कोई समाचार नहीं मिला है तब राम सुग्रीव के पास लक्ष्मण को भेजकर उनको इस बात की याद दिलाते हैं कि वे अपने मित्र को दिए गए वचन का स्मरण रखें और उसका पालन न करने से जो दुष्परिणाम हो सकता है उसके प्रति भी सतर्क रहें। अपनी सुखद निद्रा के दुःखद परिणाम के सम्बंध में उनको हल्की पर तीखी चेतावनी देते हुए राम अपना एक संदेश वाक्य भी भेजते हैं कि जिस मार्ग से वाली परलोक सिधारे, वह मार्ग इतना संकीर्ण नहीं है कि उसमें और किसी के लिए स्थान न हो और इसलिए सुग्रीव को अपना वचन निभाकर उस मार्ग से अपने को दूर रखना चाहिए। यह एक वाक्य सारी किष्किंधा को सतर्क और सचेत कर देता है। कुछ ही समय में करोड़ों वानर-योद्धा सुग्रीव की आपातकाल सूचना पर किष्किंधा में एकत्रित हो जाते हैं। सुग्रीव उस सारी सेना को राम के सामने उपस्थित कर उनको यथोचित आदेश देने का उनसे अनुरोध करते हैं। राम बड़े प्यार भरे स्वर में सुग्रीव को समझाते हैं कि आदेश देने का कार्य शासक का है, शासक के मित्र को यह काम सौंपना नहीं चाहिए। इससे पता चलता है कि राजमर्यादा और प्रशासनिक प्रक्रिया के प्रति राम के मन में कितनी निष्ठा, शिष्टता और विनम्रता है।

यद्यपि करोड़ों वानर चारों दिशाओं में सीतान्वेषण के कार्य पर भेजे गए हैं, फिर भी राम का अंत:करण निश्चित रूप से जानता है कि कार्यसिद्धि किसके माध्यम से होनेवाली है। इसीलिए वे हनुमान को अपने पास बुलाकर उनको अभिज्ञान के रूप में स्वनामांकित स्वर्ण मुद्रिका देकर कहते हैं कि इस अंगुलीयक को देखकर सीता को उन पर विश्वास होगा चाहे वे कहीं भी हों। हनुमान पर राम के विश्वास का भी प्रमाण इस घटना से मिलता है। वानररत्न हनुमान को आशीर्वाद देते समय राम कहते हैं कि

मेरा तो केवल तुम्हारे ही ऊपर भरोसा है और मेरा भविष्य तुम्हारे ही ऊपर निर्भर है क्योंकि तुम्हारी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक क्षमता की कोई सीमा नहीं हैं। इन सब बातों से पता चलता है कि राम सच्चे अर्थों में एक महात्मा (महान आत्मा) हैं और उनकी महत्ता के अनुरूप ही उनकी उदारता है।

सीता की खोज में वानर-सेना के विभिन्न दिशाओं में प्रस्थान करने के बाद राम और लक्ष्मण उनके लौट आने की प्रतीक्षा करते रहते हैं। सुंदर कांड में लंका की प्रत्येक घटना में राम का नाम किसी न किसी रूप में अनिवार्य रूप से सुनाई देता है, भले ही वे प्रत्यक्ष रूप से कहीं दिखाई न दें। लगभग सभी पात्रों के विचारों में और व्यवहार में राम की चर्चा अनेक रूपों में होती है। हनुमान के लिए राम प्रेरणा के अक्षय स्रोत सिद्ध होते हैं, मैथिली के लिए तो राम का नाम ही हृदय का स्पंदन है, रावण के लिए दिन-रात उनके मन को विक्षुब्ध करनेवाला प्रलयकालीन प्रभंजन है। अशोक वन में सीता की रखवाली करने के लिए नियुक्त असुरांगनाओं में सबसे वृद्ध और प्रबुद्ध त्रिजटा नाम की राक्षसी तो प्रभात की प्रशस्त वेला में राम को स्वप्न में देखती है और अपनी सहेलियों को स्वप्न का सारांश सुनाते हुए वह कहती है कि शीघ्र ही राम लंका में पधारकर रावण का संहार करेंगे और विभीषण को लंका का राज्य सौंप कर सीता के साथ अयोध्या जाएँगे। लंका से किष्किंधा वापस जाने पर हनुमान लंका का सारा वृत्तांत राम को सुनाते हैं और राम उनको अपने प्रगाढ़ परिरंभ (आलिंगन) से पुरस्कृत करते हैं और सात्विक विनम्रता और कृतज्ञता के स्वर में कहते हैं कि अब मेरे पास इस आलिंगन को छोड़कर तुम्हें भेंट करने के लिए और कुछ नहीं है। जल्दी से जल्दी अपने पति से मिलने के लिए आतुर सीता हनुमान के द्वारा प्रत्यभिज्ञान के रूप में जो चूडामणि भेजती है उसे देखकर राम के नयन आँसू से भर आते हैं।

कोमल मानवीयता और सदय हृदय के बावजूद राम मूलत: कर्मठ व्यक्ति है—निरंतर गतिशील और कृतसंकल्प। वे हनुमान से पूछकर लंका और लंकेश्वर की सामरिक शक्ति तथा समर तंत्र के प्रमुख केन्द्रों तथा उनके रहस्यों को समझ लेते हैं और रावण के विरूद्ध युद्ध की तैयारी करने में तनिक भी विलंब नहीं होने देते। दोनों भाई समुद्र की ओर प्रस्थान करते समय मार्ग में आकाश में तारों और धरती की प्राकृतिक सुषमा का ध्यान से निरीक्षण करते हैं और उनको विश्वास होता है कि ऊपर और नीचे सारा वातावरण उनके लिए अनुकूल है क्योंकि सत्य और धर्म उनके पक्ष में हैं। परन्तु राम की महनीयता इस बात में निहित है कि वे लंकेश के दुष्कर्म के कारण निरपराध लंकावासियों का सर्वनाश करने के लिए अपने मन को तैयार नहीं कर पाते हैं। अंतत: वे अपने मन को समझाते हैं कि मानव की सच्चरित्रता और गरिमा में लोकनिष्ठा बनाए रखने के लिए इस तरह का कदम उठाना आवश्यक हो गया है। अपनी इस धारणा का वे मन ही मन समर्थन कर लेते हैं कि उनका प्रमुख लक्ष्य अपनी पत्नी को फिर से प्राप्त करना नहीं है, बल्कि संसार के सामने इस बात को सिद्ध करना है कि सत्य

की विजय अवश्यंभावी है और अधर्म का पतन होकर रहेगा। काफी सोच-विचार के बाद वे युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं—व्यक्तिगत कल्याण के लिए नहीं बल्कि सार्वजनिक हित की भावना से। युद्ध के समय और युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद भी वे सदैव इसी भावना को लेकर आगे बढ़ते हैं। सत्य, धर्म और शांति की स्थापना के लिए राम जो अभियान चलाते हैं उसमें उनको सबसे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है—सागर को पार करने में। पहले वे समुद्र-देवता से मार्ग प्रस्तुत करने के लिए निवेदन करते हैं। लेकिन जब यह विनती काम नहीं करती है तो वे समुद्र को धमकी देकर अपना रास्ता आप बना लेते हैं। अपने एक सेनानी नल की अप्राकृतिक शक्ति के सहारे वे सागर तट पर एक अद्भुत पुल बनवा लेते हैं। उनकी प्रबल इच्छा अपनी पूर्ति का मार्ग अपने आप ढूंढ़ लेती है।

राम के अभियान की सफलता में सहायक सिद्ध होनेवाली एक और बात है—विभीषण का रावण के पक्ष को छोड़कर राम की शरण में आना। केवल हनुमान को छोड़कर शेष सभी वानर-प्रमुख राम को सलाह देते हैं कि...विभीषण को स्वीकार करना खतरे से खाली नहीं है क्योंकि उसका आशय संदेहास्पद हो सकता है। किन्तु राम न तो इस परामर्श का स्पष्ट निराकरण करते हैं और न हनुमान की सम्मति को सीधे स्वीकार करते हैं। कुशल राजनयज्ञ के रूप में राम अपना संतुलित और सुचिंतित विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि कोई भी प्राणी अपने को सर्वात्मना 'मैं आपका हूँ' कहकर मेरी शरण में आता है, उसको न्याय और सुरक्षा के साथ अभय देना मेरा परम व्रत है। वे एक कदम और आगे बढ़कर कहते हैं कि यदि रावण भी स्वयं मेरी शरण में आ जाए तो उसका भी मैं स्वागत करूँगा। राम के लिए कथनी ही करनी है। वे तत्काल लक्ष्मण को बुलाकर उनसे विभीषण का लंकेश के रूप में राज्याभिषेक कराते हैं। विभीषण को इस सम्मान के योग्य बनानेवाला गुण है—उनकी धर्मपरायणता। वह धर्मात्मा है, इसीलिए लंका के ऐश्वर्य का वह सहज अधिकारी है। राम स्वयं धर्म के साकार रूप हैं, इसीलिए वे धर्मात्मा को यह सम्मान प्रदान करते हैं।

रावण के साथ राम की पहली मुठभेड़ में ही उनकी सात्विक समर-नीति का पता चलता है। राम का प्रथम शर जैसे ही रावण को स्पर्श करता है, वह एकदम विह्वल होकर अपने को मर्माहत अनुभव करता है और उसका धनुष उसके हाथ से अपने आप खिसक जाता है। इन्द्र के वज्रायुध के आघात से भी वह इतना विचलित नहीं हुआ था। वह लगभग निस्तेज और निष्प्राण बन जाता है। इस दयनीय स्थिति में रावण को देखकर राम निष्पंद मंदहास से रावण को सलाह देते हैं कि आज के लिए तुम घर जाकर विश्राम करो और यदि इच्छा हुई तो कल अपने बल-प्रदर्शन का एक और प्रयास करना। उसके बाद जब तक सारी राक्षस सेना (इन्द्रजित् समेत) पराजित और हताहत नहीं हुई तब तक रावण फिर रणभूमि में आकर राम का सामने करने का साहस नहीं बटोर सका।

राम अपनी पराजय को भी इसी रूप में स्वीकार करते हैं। जब सुग्रीव पहली बार रावण को देखकर हठात् उनपर आक्रमण करते हैं तो राम उनको किसी प्रकार सुरक्षित लौट आने पर यह चेतावनी देते हैं कि उनको अपने ऊपर पूरा नियंत्रण रखना चाहिए। उनको वे समझाते हैं कि साहस और संयम समय की माँग है और आनेवाले दिन विध्वंस और विनाश लानेवाले हैं। वे अंगद को रावण के दरबार में भेजकर स्पष्ट और शिष्ट शब्दों में एक संतुलित संदेश पहुँचा देते हैं। राम का यह संदेश अंगद ज्यों का त्यों रावण को सुनाते हैं और यह सलाह देते हैं कि या तो तुम सादर और सम्मान मैथिली को उनके पति राम को लौटा दो और अपने को समर्पित कर दो या सर्वनाश के लिए तैयार रहकर अपने अनुज धर्मात्मा विभीषण को राज्य का उत्तराधिकारी बनने दो। इसके लिए रावण के पास वास्तव में कोई उत्तर नहीं था। परन्तु वह अपनी ही भाषा में इसका जवाब देने की चेष्टा करता है—आक्रोश, छल-कपट और दुराक्रमण के सहारे। इस कुतंत्र में वह अपने पुत्र इंद्रजित् को नियोजित करता है। किन्तु राम और लक्ष्मण धर्म के मार्ग पर डटे रहते हैं और सीधी सदी चाल से अपना अभियान चलाते हैं। जब इन्द्रजित् उनको नागपाश के शिकार बना देता है तो वे गरूड़ के सहयोग से उस भयंकर पाश से मुक्त हो जाते हैं। जब रावण लक्ष्मण पर शक्ति का प्रयोग कर उनको मूर्च्छित बना देता है, तो राम निराश न होकर अपने मित्रों की देखरेख में लक्ष्मण को छोड़कर रावण को सही और सत्वर सबक सिखाने के लिए चल पड़ते हैं। इससे रावण को इतना कड़ा सबक मिल जाता है कि वह फिर तब तक रणभूमि में नहीं दिखाई देता जब तक वह एकदम अकेला न रह गया था। इस प्रकार के संकट काल में हनुमान राम का दाहिना हाथ बनकर उनको सहारा देते हैं। जब हनुमान निश्चित अवधि के भीतर संजीवनी बूटी लाकर लक्ष्मण के प्राणों की रक्षा करते हैं तो राम उनके साहसपूर्ण कृत्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। जब इंद्रजित माया-सीता का वध करके राम और हनुमान को विश्वास दिलाता है कि सचमुच सीता का वध किया गया है तब विभीषण उसे आसुरी माया कहकर शोकमोहित राम को धीरज दिलाते हैं।

अंतिम युद्ध में भी राम को रावण का वध करने में काफी कठिनाई का सामना करना पड़ता है क्योंकि वह देवताओं की तरह अमर और अजेय दिखाई देता है। किन्तु अपनी आंतरिक दिव्य शक्ति तथा आदर्श आचरण और सत्यनिष्ठा से अर्जित तपोबल से राम अंततः रावण की जीवन लीला को समाप्त करते हैं और विभीषण से कहते हैं कि उसके पार्थिव शरीर का दाह संस्कार करें। जब विभीषण पापी अग्रज का संस्कार करने में संकोच करते हैं तो राम उनको समझाते हैं कि मृत्यु के साथ सारी शत्रुता समाप्त हो जाती है। आसुरी शक्ति को समाप्त करना ही इस ऐतिहासिक युद्ध का एकमात्र प्रयोजन था और राम ने इस कार्य में सफलता प्राप्त की। उनकी विजय असत् पर सत् की विजय थी। इसलिए वह वैयक्तिक विजय नहीं थी, बल्कि समस्त मानवता के कल्याण के लिए संपन्न विजय थी।

सीता की अग्नि-परीक्षा को भी इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझना चाहिए। इस प्रसंग में राम केवल सीता-पति के रूप में व्यवहार नहीं करते, बल्कि जगत्पति बन कर अपनी सार्वभौम दृष्टि और सामुदायिक दायित्व का परिचय देते हैं। युद्ध में विजयी होते ही वे अपनी पत्नी से मिलकर उनको सांत्वना देने के लिए आतुर होकर लंका में प्रवेश नहीं करते। उनकी प्राथमिकता सबसे पहले लंका में विभीषण के राज्य को प्रतिष्ठित करना है। जब राज्य सही उत्तराधिकारी के अधीन सनाथ हो जाता है तभी वे हनुमान से कहते हैं कि वे विभीषण की अनुमति लेकर सीता के पास जाएँ और उनको वर्तमान परिस्थिति से अवगत कराएं। जब हनुमान अशोक वन से यह समाचार लाते हैं कि जानकी अपने प्राणेश्वर का प्रसन्न मुख-मंडल देखने की चिर-संचित लालसा में बैठी हैं तो राम सारी जगती को सजग नयनों से देखने लगते हैं और चिंतनशील मुद्रा में विभीषण से कहते हैं कि वे सीता को उनके सामने उपस्थित करें ताकि सारे लोग उनको सार्वजनिक स्थान पर देख सकें। अपनी पत्नी को एक वर्ष के वियोग के पश्चात् वे सार्वजनिक रूप से देखना चाहते हैं, इसी से पता चलता है कि उनकी दृष्टि में यह विषय सार्वभौम रूप धारण कर चुका है। यह बात उनकी पैनी दृष्टि से बिल्कुल स्पष्ट होने लगती है। इन सारी मान्यताओं के होते हुए भी, लम्बी अवधि के वियोग के बाद पत्नी से मिलकर उनको परूष वचनों से संबोधित करने का तो, किसी भी दृष्टि से कोई भी औचित्य सिद्ध नहीं हो पाता । वह बिचारी साध्वी गहरी वेदना से व्याकुल होकर अपना शरीर अग्नि देवता को समर्पित करने का निश्चय करती है क्योंकि उनके प्रियतम पति को अब उसमें कोई रूचि नहीं है। राम का यह विचित्र व्यवहार जो अचानक अमानवीय आयाम धारण करता है दैवी हस्तक्षेप से प्रकृतिस्थ हो जाता है। आदि कवि के आदर्श मानव में जो अमानुष जैसे लक्षण दिखाई देते हैं वे केवल उनकी लोकोत्तर प्रकृति के द्योतक हैं जो देवताओं को भी चकित कर देते हैं। अग्निदेवता मैथिली की पवित्रता को प्रमाणित करते हुए उन्हें मानकर स्वीकार करने का आदेश राम को देते हैं और राम दैवी निर्णय को शिरोधार्य मानकर अपनी सहचरी को सांत्वना देकर उनसे क्षमा भी मागते हैं।

वाल्मीकि के अध्येता इस प्रसंग में मैथिली के उन कटु वचनों को अवश्य याद करेंगे जो कि उन्होंने लक्ष्मण को संबोधित कर कहे थे। प्रसंग यह था कि सीता और लक्ष्मण के नाम लेकर सहायता के लिए आर्तनाद करनेवाले राम (वास्तव में मायावी मारीच की) आवाज़ सुनकर सीता घबराती हैं और लक्ष्मण को तुरंत राम के पास जाकर उनको बचाने को कहती है। जब लक्ष्मण सीता को वास्तविकता समझाकर उनको अकेली छोड़कर जाने से इंकार करते हैं तो सीता उनके सदाशय और सच्चरित्रता पर संदेह प्रकट करते हुए कर्ण कठोर वचन कह देती हैं। लक्ष्मण उन पुरूष वचनों को सह नहीं पाते और राम की आज्ञा के विरूद्ध सीता को अकेली छोड़कर चले जाते हैं। संभवत: राम चाहते थे कि सीता अपने इस घोर अपराध का स्मरण करें। वास्तव में सीता भी

यह अनुभव कर रही होगी कि अब राम ने जो कुछ किया है, उससे न्याय की अपेक्षा पूरी हो गई है।

यह सब हो जाने के बाद राम पुष्पक विमान में सीता को अपने पास बिठा कर उनके वियोग में बीती बातें बड़े प्रेम से सुनाते हुए उनके दिल की चोट पर ममता की मरहमपट्टी लगाने का प्रयास करते हैं। विमान से नीचे दिखाई देने वाले विभिन्न स्थानों और दृश्यों को देखते-दिखाते हुए जब वे किष्किंधा तक पहुँचते हैं तो सीता सुझाती है कि तारा और रूमा को भी साथ ले चलें तो राजतिलक की शोभा बढ़ेगी। राम इस प्रस्ताव को तुरंत स्वीकार करते हैं। लगता है कि वे अयोध्या पहुँचने की जल्दी में नहीं हैं क्योंकि वनवास की चौदह वर्ष की अवधि के पूरी होने में अभी चार दिन बाकी हैं। इसीलिए वे रास्ते में भरद्वाज के आश्रम में रूकते हैं और हनुमान के द्वारा भरत को अपने आगमन की सूचना भेज देते हैं।

इससे भरत को भी आकस्मिक शुभ समाचार से होनेवाले मानसिक आवेग को संभालने में सुविधा होने की संभावना है। छोटी-छोटी बातों पर राम कितने जागरूक और सावधान होते हैं, इस बात का पता तब चलता है जब राम नंदिग्राम पहुँचते ही पुष्पक विमान को उसके सहज अधिकारी कुबेर के पास पहुँचा देते हैं। रावण ने इस विमान को उनसे हड़प लिया था।

सीता का वनवास भी एक ऐसी घटना है जिसको लेकर राम की कड़ी आलोचना होती है। पर सच्चाई यह है कि राम के आचरण के औचित्य पर विचार करते समय व्यापक दृष्टि अपनानी पड़ती है। स्वभाव से मानवी गुणों से संपन्न होने पर भी यह लोकोत्तर मानव कभी-कभी सत्य, धर्म, न्याय, प्रतिष्टा, गरिमा, शालीनता और मान-मर्यादा जैसे बुनियादी मानव मूल्यों के संरक्षण और संवर्धन के लिए मानवीय चेतना के सभी स्तरों से ऊपर उठकर एक उदात्त भाव-भूमिका पर पहुँच जाते हैं। बहुत कम लोग इस भूमिका की भाषा को समझ पाते हैं और जानकी ने इस भाषा को अधिकांश अपने स्वामी राम से और शेषांश बाद में अपने अभिभावक वाल्मीकि के वात्सल्य और मार्गदर्शन में सीखा है।

कवि-कोकिल वाल्मीकि अपने काव्य-नायक और नायिका से इसी कूट भाषा में बातचीत करवाते हैं और यही उनके महाकाव्य 'रामायण' की काकली है। यह हृदय की भाषा है और सच्चे हृदय ही इसकी सूझ-बूझ रख पाते है। महाकवि बालकांड के अंत में हृदय-हृदय के बीच होनेवाले इस हार्दिक की ओर मार्मिक संकेत करते हुए कहते हैं,

"अंतर्गतमपि व्यक्तं आख्याति हृदयं हृदा"

(एक दूसरे के प्रति उनके मन में जो प्रेम है, वह भीतर छिपे रहने पर भी उसी क्षण सस्वर होकर प्रकट होता है जब उनके हृदय कुछ कहना चाहते हैं।)

इस महाकवि ने अपने काव्य तथा काव्य-नायक को जिस कमनीय कला-कल्पना से रूपान्वित किया हैं, उसी से दोनों ने कालजयी अमरत्व को प्राप्त किया है और यह अमरत्व लौकिक तथा आध्यात्मिक दोनों अर्थों में सार्थक है। यही कारण है कि सत्य को अपना पराक्रम और धर्म को अपना स्वरूप बनाकर चलनेवाले राम ने इस पार्थिव जगत् के सभी सज्जनों के हृदयों को जब तक नदियाँ चलती रहें और पर्वत टिके रहें, तब तक, उस अनंत काल तक, अपना शाश्वत सदन बना रखा है।

3

परमांगना वरवर्णिनी

सीता के चरित्र को एक आदर्श नारी के प्रतिमान के रूप में चित्रित करने में वाल्मीकि की रसात्मक दृष्टि और काव्यात्मक अभिव्यंजना अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचती है। मर्यादा की मानक-रेखा, परिमार्जित सरलता की प्रतीक, शोभा और वैभव की प्रतिमूर्ति नैतिक आचार-संहिता की नैष्ठिक अनुयायिनी, परा-प्रीति की आपवादिक मूर्तरूपिणी तथा साहस और अनुकंपा की अपूर्व संधात्री इस साध्वी की गुण-संपदा ने उनको राम जैसे प्रशस्त पुरुष की उपयुक्त अर्द्धांगिनी बना दी और कभी-कभी वे राम से भी कुछ आगे पहुँच पाती हैं।

सबसे पहले महर्षि वाल्मीकि को देवर्षि नारद ने इस परमांगना का परिचय कराते समय कहा था कि यह उत्तम नारी और सर्वोत्तम वधू स्त्री के समस्त गुणों से संपन्न हैं, इसलिए विश्व की विख्यात महिलाओं में वह अग्रगण्य हैं। राम के लिए वह प्राणों में समाहित परम प्रेमरूपा प्रणयिनी हैं। बालकांड के अंत में जब वह राम की जीवन-संगिनी बनकर राजभवन में प्रवेश करती हैं तो वाल्मीकि उनको श्रीस्वरूपिणी कहकर उनके मांत्रिक व्यक्तित्व की ओर मार्मिक संकेत करते हैं। नारद भी उनको देवमाया से निर्मित नारी कहते हैं क्योंकि इस पाँच भौतिक जगत् में ऐसी हस्ती हो सकती है, इस बात पर किसी को विश्वास तक नहीं होगा। उनके जीवन की सबसे बड़ी सम्पत्ति उनकी मूक सहनशीलता है। उन्होंने जीवन में जो भी त्याग किया है, उसके लिए कभी भी किसी प्रकार के प्रतिफल या मान्यता की उन्होंने अपेक्षा नहीं की, चाहे वह त्याग उन्होंने अपने परिवार की भलाई के लिए किया हो या विशाल समाज के लिए।

उनके मन में किसी के प्रति लेशमात्र भी द्वेष की भावना नहीं है, बल्कि जो लोग उन पर बुरी नज़रे रखते हैं, उन पर भी वह दया दिखाकर उनको क्षमा कर देती हैं। जिन्होंने उनको हानि पहुँचाई, उनकी उन्होंने कभी भी कोई हानि नहीं की। जिसे वह सही समझती हैं, उसे कार्य रूप देने में वह सदा ही दृढ़ संकल्प रहती हैं, भले ही उससे उनको कुछ हानि भी हो। धर्म के सम्बंध में वह कभी भी अपनी सुख-सुविधा की बात नहीं सोचती हैं। उनका सारा जीवन जटिल समस्याओं और परीक्षाओं के बीच गुज़रा है और ये परीक्षाएं कभी-कभी इतनी दुस्तर होती हैं कि केवल उन जैसी साध्वी

ही ऐसी कसौटियों पर खरी उतर सकती हैं। सभी लोग उनकी सराहना करते हैं, कुछ लोग हृदय से करते हैं और कुछ लोग विवश होकर करते हैं। शूर्पणखा भी मन ही मन उनके अपूर्व सौंदर्य की प्रशंसा करती है। अपने भाई रावण से वह कहती है कि तीनों लोकों में सौन्दर्य में उनकी समता करने वाली नारी नहीं है। रावण भी उनको सर्वलोक-मनोहरी कहकर संबोधित करता है और उनकी पतिभक्ति और अटल निष्ठा के प्रति उसके मन में अत्यंत आदर की भावना है। मंदोदरी यद्यपि कुलमर्यादा, सौंदर्य और दाक्षिण्य में अपने को सीता से अधिक या समान मानती हैं, पर रावण के संहार के पश्चात सीता की प्रशंसा करते हुए वह कहती हैं कि मैथिली श्रीदेवी और भूदेवी की प्रतिमूर्ति हैं और रोहिणी एवं अरूंधती से भी अधिक पवित्र और तेजस्विनी है। किन्तु यह विधि की विडंबना है कि परम सौन्दर्य की राशि, धर्म-परायणता और सत्य-निष्ठा से संपन्न इस परम साध्वी को जीवन भर घोर यातना सहनी पड़ी और अंत में माँ धरती के गर्भ में शरण लेनी पड़ी। पर वास्तव में रामायण की रमणीय और करूणामय गाथा में रेखांकित कठोर सत्य यही है। राम और सीता के इस समन्वित अयन में ये दोनों लोकोत्तर पात्र आजीवन संसार के सर्वोत्तम श्रेय के अमर प्रतीक बने रहे। दशरथ और कौशल्या को सांत्वना देते हुए सुमंत्र, ठीक ही कहते हैं कि लोक कल्याण की भावना से स्वयं करूणामय जीवन व्यतीत करनेवाले आदर्श युगल राम और सीता के सम्बंध में चिंता नहीं करनी है क्योंकि उनका जीवन अनंत काल तक मानव जाति के लिए एक उदात्त आदर्श बना रहेगा और उनकी कहानी युग-युग तक लोगों की स्मृति में प्रतिष्ठित रहेगी।

वाल्मीकि रामायण में सीता और राम का विवाह अन्य तीन भाइयों के विवाह के साथ-साथ अत्यंत सरल, निराडंबर पर वेदसम्मत विधि से संपन्न होता है। परवर्ती राम काव्यों में जो वैभवपूर्ण वर्णन मिलता है, वह वाल्मीकि में नहीं है। विवाह का पूरा वर्णन 40 श्लोकों में संक्षिप्त सर्ग में समा जाता है जिसमें केवल आधा भाग ही विवाह के वास्तविक वर्णन के लिए पर्याप्त हो जाता है। नवदंपति के पारस्परिक प्रणय-भाव अथवा वार्तालाप की कोई झलक पाठकों को नहीं मिलती। परन्तु बालकांड के अंत में उनके हृदय-संगम का मार्मिक वर्णन हृदय की ही भाषा में प्रस्तुत किया गया है जिसको हृदयज्ञ ही समझ सकते हैं।

रामायण में श्री स्वरूपिणी सीता की बातें पहली बार पाठकों को सुनने का अवसर तब मिलता है जब प्रस्तावित राजतिलक के दिन सबेरे-सबेरे कैकेयी और दशरथ के आदेश पर राम को अंतःपुर ले जाने सुमंत्र के आने पर राम को मंगलकामना के साथ विदा करते समय वह कुछ कहती हैं। जिस परिवेश से सुमंत्र यह संदेश लेकर आते हैं, उससे कोई भी बुद्धिशाली व्यक्ति अनुमान लगा सकता है कि वास्तव में बात कुछ चिन्ताजनक है और सूक्ष्मग्राही राम उस बात को सांकेतिक भाषा में सीता से कह भी देते हैं। सीता की समयज्ञता तुरंत इस आशय को समझ लेती हैं और उसी के अनुसार

अपने पति की सुरक्षा और अभ्युदय के लिए समस्त देवी-देवताओं का आशीर्वाद मांगती हैं। वह अपने पति को विदा करने द्वार तक जाती हैं। जानकी की मृदु-मधुर, संस्कार संपन्न, सांकेतिक और संतुलित वाणी पहली बार सुननेवाले पाठकों को बाद में पता चलेगा कि अनसूया ने इनको मधुर-भाषिणी क्यों कहा, स्वयं राम उनको 'कल्याणतर वादिनी' कहकर बार-बार क्यों स्मरण करते थे और हनुमान ने उनको 'अदीनभाषिणी' क्यों माना।

उसी दिन कुछ ही समय के बाद एक दूसरे प्रसंग में वह फिर राम से बातचीत करती हैं। प्रस्तावित राजतिलक प्रव्रजन का रूप धारण करता है। राम को उसी दिन शाम तक वनवास के लिए प्रस्थान करना है। इसके लिए उन्होंने अपनी माँ कौसल्या का आशीर्वाद प्राप्त भी कर लिया है। किन्तु यह समाचार सीता को सुनाने में राम संकुचा रहे हैं। अप्रसन्न और आक्लांत वदन लेकर वे सीता के पास पहुँचते हैं तो उनका उदास चेहरा देखते ही सब कुछ समझनेवाली सूक्ष्मग्रहिणी अस्पष्ट आतुरता से विस्मय के स्वर में पूछती है, "क्या हो गया आपको, प्रभु!"(किमिदानीमिदं प्रभो)। राम बहुत संकोच के साथ धीरे-धीरे दारुण समाचार सुनाते हैं और कहते हैं कि चौदह वर्ष तक वे पिता के आदेश का पालन करते हुए वनवास करेंगे और सीता को इस अवधि में सास-ससुर की सेवा करते हुए घर पर रहना है। इस पर सीता तुरन्त अपने मन को सब कुछ समझाकर राम से कह देती हैं कि आप के सामने जो चुनौती है, उसको मैं आपसे पहले ही स्वीकार कर लेती हूँ और वनवास के समय मैं आपके साथ ही रहूँगी और सुख-दुख में आपकी सहभागिनी बनकर आपकी सेवा करूँगी ताकि आपका मार्ग निष्कंटक और स्वच्छ बना रहे। जब राम सीता को अपने साथ ले चलने से बराबर इंकार करते जाते हैं और वनवास में होनेवाली कठिनाइयों और बाधाओं का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करने लगते हैं तो सीता मुस्कुराकर कहती हैं कि मेरे धीरज और निश्चयात्मिकता पर आपको क्यों विश्वास नहीं हो रहा है। इससे भी राम का मन बदलता-सा नहीं दिखाई देता है तो वह साहस बटोर कर कह देती हैं कि अयोध्या के पराक्रमी राजकुमार को यह कायरता शोभा नहीं देती है। उपहास के स्वर में वह यह भी कह देती हैं कि उनके पिता राजा जनक को यह पता नहीं था कि उनका जामाता केवल आकार में पुरुष है, पौरूष तथा पराक्रम में नहीं। इससे राम मौन हो जाते हैं और उनको साथ लिए वन जाने को तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार जानकी अपने पति के साथ वन जाने के अपने अधिकार को साग्रह प्राप्त कर लेती है, हालाँकि कैकेयी की वर-याचना में उनका साथ चलना शामिल नहीं था। किन्तु राम के साथ इस नाजुक मामले पर बातचीत करते समय सीता भावात्मक संतुलन, शालीनता और राजपरिवार की गरिमा के अनुरूप उदात्त औचित्य का अद्भुत निर्वाह करती हैं। राम भी उनकी शिष्टता और स्पष्टवादिता की सराहना करते हैं जिसमें उनके परिवारिक परिवेश की प्रतिष्ठा स्पष्ट परिलक्षित होती है। उनको इस बात का गर्व होता है कि उनको जीवनसंगिनी के रुप में ऐसी उदात्त महिला मिली है। जब राम वनजीवन की विभीषिकाओं और चुनौतियों का विस्तार से

वर्णन करने लगते हैं तो सीता एक अनोखी बात कहती हैं। वे कहती है–"जब समस्त भय का स्त्रोत और समाधान साथ में हैं तो भय किस बात का है?" राम को यह देखकर सुखद आश्चर्य होता है कि अपने तर्क के अंतिम प्रहार के रूप में जब सीता की आँखों से आँसू निकलते हैं तो उन आँसूओं में भी भय का आभास तक नहीं था। इसीलिए वे अश्रुकण चुपके से उनके हृदय में पहुंचकर उसमें महिमामय मनस्विता की मंगल ज्योति जगाते हैं।

जब कैकेयी सीता को राम के साथ-साथ वल्कल वसन पहनने के लिए बाध्य करती है तो वसिष्ठ हस्तक्षेप करके कैकेयी से आक्रोश भरे स्वर में कहते हैं कि तुम अपनी मर्यादा का अतिक्रमण कर रही हो और फिर सबके सामने कहते हैं कि राम के वनवास की अवधि में उनके प्रतिनिधि के रुप में सीता देश का शासन करेगी। वल्कल वसन देखकर और वसिष्ठ के जोश भरे वचन सुनकर सीता भोली भाली आँखों से देखने लगती हैं। अंततः वह वल्कल पहनकर अपने पति के साथ वनवास के लिए प्रस्थान करती हैं हालांकि राजा दशरथ के द्वारा आशीर्वाद सहित भेंट किए गए अमूल्य वस्त्र और आभरण वह साभार स्वीकार करती है। जब माँ कौशल्या विदाई के समय उपदेश के रुप में उनसे कहती है कि वनवास के समय वह राम की सादर देखभाल किया करे तब वह बड़ी सात्विक विनम्रता से कहती हैं कि राम जैसे उत्तम पति की जीवन-सहचरी के रुप में अपना दायित्व निभाने के लिए आवश्यक शिक्षा उनको माँ के घर मिली है। यह बात जब उनके मुँह से निकलती है तो उस वाणी की शालीनता को देखकर वहाँ पर उपस्थित सभी की आँखों में आंसू छलक उठते हैं।

गंगा नदी को पार करते समय लोकपावनी से बद्धांजलि बनकर अनुरोध करती हैं कि वनवास की अवधि को विधिवत् संपन्न करा दें ताकि उनके पति अपनी व्रतचर्या में सयश उत्तीर्ण हों। रामपत्नी की इस अंजलिबद्ध प्रार्थना को शब्दशिल्पी वाल्मीकि 'सीतांजलि' की संज्ञा देते हैं।

ऋषि भरद्वाज अपने वात्सल्यमय आशीर्वाद से सीता को अनुगृहीत करते हैं और दोनों राजकुमारों से कहते हैं कि वे उनकी हर इच्छा की पूर्ति करते रहे क्योंकि उन्होंने अपने पति की सेवा के लिए अपनी इच्छा से वनवास को स्वीकार किया है। महर्षि अगस्त्य भी सीता की त्याग-भावना की प्रशंसा करते हैं क्योंकि संकट के समय जान-बूझकर हर प्रकार की जोखिम उठाने के लिए तैयार होकर उन्होंने पति-सेवा का यह मार्ग अपनाया है। पावन तपस्विनी अनसूया के भी अमोघ आशीर्वाद उनको प्राप्त होते हैं। इस पर राम को भी तनिक ईर्ष्या होती है। वाल्मीकि सीता और अनसूया में इतना तादात्म्य स्थापित करते हैं कि सीता को भी वे अनसूया के नाम से अभिहित करते हुए कहते हैं कि एक अनसूया से (अनसूयानसूयया) दूसरी अनसूया बात कर रही है। आशय केवल इतना ही है कि एक जन्म से अनसूया है और दूसरी (सीता) संस्कार से। साध्वी अनसूया के कहने पर जब सीता अपने विवाह की सारी बातें अनसूया को सुनाती हैं

तो वृद्ध तापसी को परम आनंद का अनुभव होता है। परिणय का यह संक्षिप्त परिचय ऋषि पत्नी को इतना श्रुति-मधुर और हृदयगंम लगता है कि वह बाह्य प्रकृति में भी उन मधुर क्षणों को प्रतिबिंबित देखती हैं। वृद्ध तापस अत्रि और अनसूया-तरूण तापसियों को मधुर शब्दों तथा मधुरतर भावनाओं के साथ दंडकवन के लिए विदा करते हैं।

जैसा कि पहले सोचा गया था, वन-जीवन सीता, राम और लक्ष्मण के सामने कई चुनौतियों खड़ा कर देता है। परन्तु विकट से विकट परिस्थितियो में भी सीता अपना मानसिक संतुलन नहीं खोती है। पहला मुकाबिला विराध के साथ होता है जो सीता को अपनी गोद में उठाकर भागने लगता है। जब दोनों राजकुमार उस पर तीर चलाते हैं तो सीता को जमीन पर उतार कर दोनों भाईयों को बांहों पर रखकर दौड़ने लगता है। इस विकट परिस्थिति में सीता अपने लिए चिंतित न होकर राक्षस से अनुरोध करती हैं कि वह राजकुमारों को छोड़कर उनके स्थान पर स्वयं को ले जाए। इस भयंकर मनस्थिति में उनको छोड़कर मुझे ले जाओ कहने के लिए और उस राक्षस को नमस्कार करते हुए 'राक्षसोत्तम' कहकर संबोधित करने के लिए (माँ हरोत्सृज काकुत्थौ नमस्ते राक्षसोत्तम) एक युवा स्त्री में इतना साहस और विश्वास हो सकता है, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। प्रथम उदंत में ही जानकी ने जिस धैर्य और स्थैर्य का परिचय दिया है, वह आगे चलकर उपस्थित होनेवाले इससे भी अधिक विद्रावक उपद्रवों के लिए तैयार करता सा प्रतीत होता है। वह निरंतर एक ओर राम और लक्ष्मण का और दूसरी ओर वन्य मृगों और राक्षसों पर सतर्कता से ध्यान रखती हैं। इस प्रकार साधु-संतों और क्रूर राक्षसों से आवासित उस दुर्गम प्रदेश में राम के प्रयोजन मूलक अभियान को सार्थक बनाने में रामपत्नी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

दंडक वन के राक्षसों से पीड़ित ऋषि-मुनि जब राम के पास जाकर अपनी करुण कहानी सुनाते हैं तो राम उनको तत्काल आश्वासन देते हैं कि आतंकवादी असुर समाज के अत्याचारों से उनकी संपूर्ण रक्षा की व्यवस्था की जाएगी। इसी लक्ष्य की सिद्धि के लिए वे दंडक वन का सर्वेक्षण करते हैं ताकि उसको आततायियों से मुक्त कर शांति स्थापित की जा सके। इस अवसर पर सीता राम से यह जिज्ञासा प्रकट करती हैं कि निरपराधियों को दंड देना क्या अपराध नहीं है। एक प्रकार से यह सवाल राम के निर्णय को दी गई चुनौती ही है, पर मृदुभाषिणी सीता शिष्ट भाषा में राम का स्पष्टीकरण मांगती हैं। राम सीता के विवेकशील प्रश्न की प्रशंसा करते हैं और अपने निर्णय का समर्थन करते हुए कहते हैं कि विधि और न्याय के संरक्षकों का यह कर्तव्य है कि वह अत्याचारियों के आतंक से पवित्र जीवन व्यतीत करने वालों की रक्षा करें। भले ही वे इस प्रकार की सहायता न मांगें। राम का अभिमत है कि यदि इस कार्य को संपन्न कर सकें तो उनका वनवास सार्थक सिद्ध होगा।

राम, सीता और लक्ष्मण के अयन को आगे बढ़ाने में पंचवटी प्रमुख भूमिका निभाती है। विधि की विडंबना कुछ ऐसी थी कि सीता इस घटनाक्रम की केन्द्र बिन्दु

बन जाती हैं। पंचवटी में शूर्पणखा के आकस्मिक प्रवेश का प्रमुख आकर्षण राम ही का सौन्दर्य था। पर बाद में परिस्थितियों ने सीता को भी इसमें घसीट लिया। शूर्पणखा ने केवल राम का हृदय जीतने के लिए सीता को राम के अयोग्य सिद्ध करने का प्रयास किया और इसी संदर्भ में सीता के सौन्दर्य की आलोचना की। पर आश्चर्य की बात यह है कि परिहास प्रिय राम ने केवल मनोरंजन के लिए उस महिला को भटकाया और इसका बहुत भारी मूल्य उनको चुकाना पड़ा। राजकुमारों की विनोदप्रियता को सही दृष्टि से समझने में असमर्थ शूर्पर्णखा सीता को अपने मार्ग का अवरोध समझकर उन पर टूट पड़ी। किन्तु इस सारे कांड में सीता ने कभी अपना मुँह नहीं खोला, पर अंत में इसके परिणामस्वरुप उन्हीं का रावण द्वारा अपहरण हुआ। वास्तव में पंचवटी में जो कुछ हुआ सब अवैध, अहेतुक और अनैतिक था। किन्तु विडंबना यह है कि दूसरों की गलती और असावधानी के कारण सीधी-सादी साध्वी सीता को नियति का शिकार बनना पड़ा। सीता से यदि कोई गलती हुई तो वह केवल यही थी उन्होंने स्वर्ण-मृग की त्वचा के प्रति अपनी मनोकामना व्यक्त की और उवके बाद मायावी मारीच का आर्तनाद सुनकर लक्ष्मण को तुरन्त राम के पास जाकर उनकी रक्षा करने के लिए बार-बार और औचित्य की सारी सीमा पार कर बाध्य किया। यद्यपि उन्होंने यह सब सतर्कता को सद्भावना से ही किया था, फिर भी यह उनकी बड़ी भारी गलती थी। इसके साथ राम और लक्ष्मण भी विवेक से काम करने में असफल हो गए। यद्यपि तीनों अपने अपने विचार, वाणी और आचरण में असाधारण प्रज्ञा और संतुलन रखनेवाले हैं, फिर भी नियति के निरवरोध मार्ग को कोई रोक न सका। रावण को इस अनुचित कार्य से रोकने के लिए मारीच का किया गया सारा सत्प्रयास निरर्थक हो गया और जटायु का साहसपूर्ण संघर्ष भी सफल नहीं हो पाया। जो होना था, वह अंततः होकर ही रहा और इसका फल भोगना पड़ा सहज सरल जानकी को।

किन्तु जनक नंदिनी अपनी गलती तब तक समझ नहीं पाई जब तक रावण ने साधु वेश में उनके आश्रम में पहुँचकर अपना वास्तविक स्वरुप और दुष्ट आशय प्रकट नहीं किया। यद्यपि अपनी गलती को पहचानने में उनको देर हुई है, फिर भी जो विकट स्थिति सामने आई, उसका उन्होंने आत्माभिमान, साहस और शालीनता के साथ सामना किया। सामने जो जैसा दिखाई दिया, उस पर उन्होंने विश्वास किया साधु-वेष में आए रावण को साधु ही समझकर साधु के साथ जैसा व्यवहार करना चाहिए, वैसे ही किया क्योंकि वह साधू ही दिख रहा था। उन्होंने अतिथि-सत्कार के रुप में उनको फल-जल आदि भेंट किए और कहा कि मेरे पति अभी आने वाले हैं, आप थोड़ी देर प्रतीक्षा करें। रावण के सदाशय पर पूरा विश्वास रखकर उनके प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने अपने बारे में पूरे विवरण दिए। लेकिन जैसे ही उसका धूर्त रुप प्रकट हो गया, उन्होंने उसकी तनिक भी परवाह नहीं की। निर्भीकता के साथ उन्होंने उसके कदाचार का खंडन किया और उसको धमकी देते हुए कहा कि यदि उसने राम से शत्रुता मोल ली तो तो उसके प्राणों को खतरा अवश्यंभावी है और वह राम से बच नहीं पाएगा चाहे वह कहीं भी

जाकर छिपने का प्रयास करे। रावण की मनोकामना को साफ़-साफ़ ठुकराते हुए उन्होंने अपने पति के असाधारण व्यक्तित्व और पराक्रम का विस्तार से वर्णन किया। अंतत: अपने को रावण के पाश में असहाय दशा में पाकर उन्होंने त्राहि-त्राहि कहकर जोर से आवाज़ लगाई। इस नि:स्हाय अवस्था में जब उनको जटायु दिखाई दिया तो उस पक्षिराज़ के साहस और त्याग की उन्होंने सराहना की। परन्तु उनको पछतावा हुआ कि जटायु ने अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की। उनकी आंतरिक इच्छा केवल यही थी कि कम से कम राम को यह सारा वृत्तांत सुनाने तक वह जीवित रहे। रास्ते में एक पर्वत शिखर पर कुछ वानरों को देखकर उन्होंने अपने कुछ गहने वहाँ पर डाल दिए ताकि राम को बाद में उनका पता लगाने में कुछ सहारा मिले। आखिर वह अशोक वन में रावण की बंदी बन गई। यहीं से सही अर्थो में अपनी प्रियदयिता, परम सुंदरी, सौगुण्य-राशि तथा स्वार्थ-रहित प्रेम और निर्भय त्याग की प्रतिमूर्ति सीता की खोज में राम का अयन या अन्वेषण अभियान आरंभ होता है।

सौन्दर्य की खोज में संपन्न यह अभियान, जो वास्तव में रामायण का प्रमुख चरितार्थ है, सत्य से सौंदर्य के क्षणिक वियोग से आरंभ होकर जीवन की इन शक्तियों के चिरंतन संयोग के साक्षात्कार में सुखद संयोग और समावर्तन पाता है। इस संयोग के समर्थ संधायक के रूप में वाल्मीकि हनुमान को प्रस्तुत करते हैं। यह अभियान राम और लक्ष्मण को पंचवटी से किष्किंधा पहुँचाता है। यह स्मरणीय है कि पंचवटी को अपना आवास बनाने का परामर्श राम को महर्षि अगस्त्य ने दिया था और किष्किंधा जाकर सुग्रीव से मित्रता बनाने की सलाह कबंध ने दी थी। यह सूचना भी कबंध से मिली कि सुग्रीव को भी राम की सहायता की आवश्यकता है, इसलिए वे राम की सहायता अवश्य करेंगे।

यद्यपि मुख्य रुप से सुग्रीव से मैत्री बनाने के लिए ही राम किष्किंधा पहुँचे थे, फिर भी सुग्रीव को जो कार्य सौंपा गया है, उसको संपन्न करने में हनुमान अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सीता का पता लगाने, उनको पहचानने और उनको सांत्वना देने का ही नहीं, बल्कि उनके कुशल-मंगल और सुरक्षा का समाचार फिर राम तक पहुँचाने का कार्य भी वे ही करते हैं और इस प्रकार सीता-राम के सुखद समागम का मार्ग प्रशस्त कर देते हैं। इस कार्य-निर्वहण के माध्यम से वे सीता और राम दोनों के निकट आते हैं और उनकी प्रशंसा, आत्मीयता और आशीर्वाद के पात्र बन जाते हैं। करोड़ों वानर-वीरों को जो काम सौंपा गया है, वह सब वे अकेले संभाल लेते हैं। रात भर अत्यंत सावधानी और कर्मठता के साथ एक अज्ञात प्रदेश में सीता को खोजने के बाद जब अशोक वन में देवी के दर्शन होते हैं तो वे अपने को अत्यंत आश्वस्त, सम्मानित और धन्य समझते हैं। सभी दृष्टियों से परमांगना और वर वर्णिनी देवी की प्रसन्न रमणीय आकृति को देखने पर जब उनको पता चलता है कि सभी सद्गणों के साकार रूप राम की आकृति से इस देवी की आकृति भी एकदम मेल खा रही है तो उनके आश्चर्य

का ठिकाना नहीं रहता है। भीतर ही भीतर बार-बार सोचने पर भी उनकी विश्लेषणात्मक बुद्धि यह समझ नहीं पाती कि पति-पत्नी की आकृतियों में इतना साम्य कैसे घटित हो पाया है। उनका शारीरिक सादृश्य देखकर उनको लगता है कि उनके मन भी इसी प्रकार एक दूसरे से मिलते जुलते होंगे। पेड़ के पत्तों के पीछे लुक-छिपकर जब वे देवी को निकटता से देखने का प्रयास करते हैं तो उनकी आंखें अपने प्रियतम राम की अगोचर किन्तु सुसमाहित मुखाकृति पर पूर्ण रूप से केन्द्रित दिखाई देती हैं। उनके नयनों के अयन में हनुमान को राम और केवल राम दिखाई देते हैं। इसीलिए वाल्मीकि सीता को 'रामेक्षणी' (केवल राम पर संलग्न नयनवाली) कहते हैं। उनका मुख-मंडल पूर्णचंद्र के समान चारों तरफ के अंधेरे को दूर करनेवाली ज्योत्स्ना-वितान से सुशोभित है। वह श्रद्धा की प्रतिमा और आशा की आभा के रूप में दिखाई देती हैं, पर विधि की विडंबना से अपगत और प्रतिहत प्रतीत होती हैं। तीनों लोकों को आलोकित करनेवाले उनके सौन्दर्य, ऐश्वर्य सौशील्य, पवित्रता और सहज सात्विकता के लिए लाख कोशिश करने पर भी हनुमान को कोई प्रतिमान दिखाई नहीं देता। उनके उज्ज्वल नयनों में समदर्शिता का एक सुंदर समीकरण पाकर हनुमान चकित हो जाते हैं। उनका मन तुरंत राम के पास पहुँच जाता है, बल्कि कहना चाहिए कि अपनी यह सारी अनुभूति उसी क्षण राम को बताने के लिए वे मन से तत्काल राम के पास पहुंच जाते हैं।

जब हनुमान इस प्रकार एकदम सामने दिखाई देने वाली परम रमणीयता में तल्लीनता के साथ निमग्न हो रहे थे, तो उसी समय रावण अशोक वन में प्रवेश करता है और सीता को इस बात के लिए राज़ी करने का प्रयास करता है कि वह उसको अपने स्वामी के रूप में स्वीकार करे और उसकी पट्टमहिषी बने। इससे कपीश्वर कुपित होते हैं और शांतचित्त होकर देखते है कि यह उत्तम साध्वी इस कुत्सित प्रलोभन का समुचित उत्तर किस प्रकार देनेवाली है। वे देखते हैं कि जानकी रावण के प्रस्ताव को तिनके के समान ठुकराती है और उसको धिक्कार कर कहती हैं कि तुम अपना बर्ताव ठीक कर लो। सीता ने सबसे पहले रावण को साधु के वेष में देखा था, इसलिए वे रावण को सलाह देती हैं कि गलती से ही सही, उसने जो सही रूप धारण कर लिया था, उसकी वह मर्यादा रखे। वह उसको सचेत कर देती है कि यदि उसने अत्याचार या अनुनय-विनय करने का प्रयास किया तो सारा राज्य नष्ट हो जाएगा और वह भी बच नहीं पाएगा। क्योंकि राम के दुर्दम्य पराक्रम के सामने वह टिक नहीं पाएगा। वह स्पष्ट शब्दों में उसे कह देती हैं कि अपने को और अपने राज्य को सर्वनाश से बचाने का एक मात्र उपाय यही है कि वह राम के चरणों में अपने को समर्पित कर उनकी पत्नी को उन्हें ससम्मान वापिस कर दें। परन्तु रावण इस चुनौती पर बिल्कुल ध्यान नहीं देता है और उल्टे सीता को ही चुनौती देता है कि यदि दो मास के भीतर उन्होंने उसकी बात नहीं मानी तो उसके रसोइये उनको उसके लिए नाश्ता बनाकर परोसेंगे। सीता पराङ्मुख होकर उसकी उपेक्षा कर देती हैं।

अब हनुमान को विश्वास होता है कि अशोक वन में शिंशपा वृक्ष के नीचे बैठी यह भद्र महिला वास्तव में वही सती साध्वी है जिसको प्राप्त करने के लिए राम धरती और आकाश को एक करने को उद्यत हैं। राम की पतिपरायणा पत्नी मे हनुमान को जो वास्तविक सौन्दर्य दिखाई देता है, वह यही है और यही सौन्दर्य उनके शारीरिक सौन्दर्य को सुन्दरतर बना देता है।

अब हनुमान सीता के पास जाकर उनसे बात करने का साहस बटोर रहे हैं ताकि किष्किंधा वापस जाकर राम को उनके बारे में सही जानकारी दे सकें। सीता की दृष्टि अभी तक हनुमान पर नहीं पड़ी। इसीलिए उनकी दृष्टि को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए वे रामकथा का संकीर्तन आरंभ करते हैं—विशेष कर किष्किंधा में राम का प्रवेश और वानर वीरों के साथ उनका परिचय आदि परवर्ती घटना क्रम पर प्रकाश डालते हुए। जब राम का मधुर मनोहर नाम उच्चारण करने वाले वानर की ओर सीता की दृष्टि प्रसारित होती है तो हनुमान को नीचे उतर कर देवी को अपना परिचय देने का साहस मिल जाता है। अपनी पहचान और उनके यहाँ तक पहुँचने में अपने सदाशय के सम्बंध में भी सीता को आश्वस्त करने के बाद हनुमान उनको राम की दी हुई मुद्रिका देते हैं। दोनों का संवाद धीरे-धीरे पारस्परिक रूचि के अनेक विषयों पर आत्मीयता से ओत-प्रोत वार्तालाप का रूप धारण करता है। परम साध्वी सीता के विश्वास को पूर्ण रूप से प्राप्त करने के बाद हनुमान उनके सामने यह प्रस्ताव रखते हैं कि उनके समस्त दुख: और वेदना को अचिर काल में दूर करने के लिए वे उनको अपने कंधे पर बिठाकर तत्काल राम के पास पहुँचा सकते हैं। किन्तु सीता इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती और इसके लिए अनेक कारण बताती हैं। उनमें से प्रमुख कारण यह है कि कि अपनी पत्नी को अपहर्ता के यहाँ से प्रच्छन्न रूप से अपने पास बुला लेना राम की प्रतिष्ठा के अनुरूप नहीं है। वह स्पष्ट शब्दों में अपना अभिमत व्यक्त करते हुए कहती हैं कि राम को रावण से युद्ध करके उस पर विजय प्राप्त करनी है और उसके बाद ही सगर्व और सयश अपनी पत्नी को अयोध्या ले जाना है। अब हनुमान को पूरा-पूरा विश्वास हो जाता है कि केवल भौतिक ओर बौद्धिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक चेतना की दृष्टि से भी यह साध्वी राम जैसे उदात्त व्यक्ति की सहचरी बनने की योग्यता रखती हैं। जानकी और हनुमान के बीच आदर्श तथा चिंतन से संबंधित जो विचार-विनिमय हुआ है, उससे हनुमान को अनुमान होता है कि सीता का तात्विक और सात्विक स्तर कितना उदात्त है। उनके हृदय-कुहर के बीच विराजमान इसी आलौकिक और अंतरंग सौन्दर्य को उद्भासित करना ही कवि-मनीषी का काव्यार्थ था जो कि सुंदर कांड की सुंदरता को सार्थक बना देता है।

प्राय: कहा जाता है कि सुंदर कांड का प्रत्येक पात्र प्रत्येक घटना, प्रत्येक गतिविधि, प्रत्येक शब्द और प्रत्येक विचार सुंदर हैं और उसमें कोई बात ऐसी नहीं है जो सुंदर नहीं कही जा सकती है। इस सुंदर काव्य-खंड का सुंदरतम सार तत्व परमांगना और वर-वर्णिनी के रूप में दर्शन देने वाली जानकी का सर्वतोमुख सौन्दर्य है। केवल 'हाँ'

कहने मात्र से उपलब्ध होने वाले अपार लौकिक वैभव को तिनके के समान ठुकराकर जीवन के शश्वत सुख और आंतरिक सुषमा को समृद्ध बनाने वाले बुनियादी सिद्धांतों पर निःस्वार्थ और निर्भीक मनोवृत्ति के साथ डटे रहने के लिए परमाणु ऊर्जा से भी अधिक ऊर्जस्वित आत्म-तेज की अजेस्र धारा का संप्रसारण अपेक्षित होता है जिसको विषाद-नंदिनी वैदेही के रूप में वाल्मीकि ने अपने सुंदर कांड के सुंदरतम कला खंड में प्रस्तुत किया है।

हनुमान के दिव्य तेज को पहचानने में मैथिली को अधिक समय नहीं लगता है। पर्याप्त समय तक उनसे बात करने के बाद उनको उन पर पूरा विश्वास हो जाता है और वह उनसे कुछ ऐसी आंतरंगिक बातें कहती हैं जो उनको और राम को छोड़कर और किसी को मालूम नहीं हैं। इस प्रकार के व्यक्तिगत प्रसंगों का वर्णन वह इसलिए हनुमान को सुनाती हैं कि ये बातें सुनकर राम को यह विश्वास होगा कि हनुमान ने वास्तव में सीता को देखा है। जब हनुमान राम को अभिज्ञान के रूप में दिखाने के लिए कोई आधार-वस्तु चाहते हैं तो सीता तत्काल अपने सिर का आभरण चूडामणि देती है। हनुमान के प्रति उनके मन में इतनी आत्मीयता स्थापित हो जाती है कि वह उनको विदा करना नहीं चाहती। परन्तु उनको मालूम है कि जितनी जल्दी हनुमान राम के पास पहुँच जाएँ उतनी ही जल्दी राम रावण का संहार कर उनका दुःख दूर करेंगे। इसीलिए वह अपने मन को समझाकर अंततः हनुमान को कुछ समय के लिए विदा करती हैं।

हनुमान गुप्तचर के रूप में लंका छोड़कर नहीं जाते। वह अपने आगमन से सभी नागरिकों को और रावण को भी अवगत करा देते हैं। वह रावण को सलाह देते हैं कि या तो वह राम से क्षमा माँगकर उनकी पत्नी को लौटा दें या अपने और अपने राज्य के सर्वनाश के लिए तैयार रहे। जब रावण यह आदेश देता है कि हनुमान की पूँछ जलाकर उनको सारी लंका में घुमा दे तो हनुमान इस अवसर का लाभ उठाकर सारी लंका को जला देते हैं। इस उतावली में उनको संदेह होता है कि कहीं इस अग्निकांड में सीता तो नहीं जल गई हैं। लेकिन जल्द ही कुछ पुरजन आपस में इस बात की चर्चा करते हुए दिखाई देते हैं कि सारी लंका जल गई, पर सीता सुरक्षित है, तब हनुमान अनुभव करते हैं कि सीता को आग जला नहीं सकती क्योंकि वह अग्नि के समान ही पवित्र है (न नशिष्यति कल्यणी नाग्निरऽनौ प्रवर्तते)। वास्तव में सीता भी इसी प्रकार रावण के आदेश की बात सुनकर हनुमान की सुरक्षा के सम्बंध में चिंतित हो जाती है और तुरंत अग्निदेवता से हाथ जोड़कर अनुरोध करती हैं कि राम के यहाँ से शंतिदूत बनकर आए हनुमान के लिए वह शीतल बन जाए। वाल्मीकि के शब्दों में कपीश्वर के ताप को अपना ही ताप समझकर अपने इष्टदेव पावक से पावन मन से परम पावनी प्रार्थना करती हैं :

यद्यस्ति पति शुश्रूषा यद्यस्ति चरिंतं तपः।
यदिवात्वेकपत्नीन्वं शीतो भव हनूमतः॥

(यदि अपने पति के प्रति मेरी सेवा-भावना का कोई मूल्य हो, यदि मेरे आचरण में तपोनिष्ठा किसी न किसी रूप में विद्यमान हो और यदि हम दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति अन्य अनुराग का आत्मविश्वास हो तो हे मेरे देवता, तुम हनुमान के लिए शीतल बनो।)

इसके साथ और तीन श्लोकों को जब जानकी उच्चारित करती हैं तो उनकी मांत्रिक महिमा हनुमान की पवित्र आत्मा को परिकल्पित पर पीड़ा से मुक्त कर उनके शरीर को सुख-शीतल रखती है। इतना ही नहीं, जो आग उनको जलाने के लिए लगाई गई, वही आग जलानेवालों की समस्त नगरी को जला डालती है। यह चमत्कार देखकर स्वयं हनुमान को भी आश्चर्यजनक प्रसन्नता होती है और उनको इस बात का आत्म बोध होता है कि सीता की मंगल-कामना, राम की लोकोत्तर महिमा और पूज्य पिता पवन की पावन पावकता सबने समय पर उनका साथ दिया है। उनके आत्मानंद के उद्गार भी उतने ही प्रभावशाली प्रतीत होते हैं जितने कि सीता के मंगला-शासन। वाल्मीकि की वाणी भी इस प्रसंग में प्रांजल ओर प्रभावशाली बनकर अपनी अभिव्यंजना को मर्यादा और महिमा से अलंकृत कर देती है। इस प्रसंग का प्रत्यक्षर पढ़ते समय पाठक इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव करता है कि रामायण के इस पंचम कांड को कवि-कोकिल ने सुंदर कांड का नाम क्यों दिया।

इस घटना के बाद हनुमान फिर एक बार सीता के दर्शन करते हैं—केवल उनसे विदा लेकर उनके विदाई संदेश को राम तक ज्यों का त्यों पहुँचाने। मैथिली शांतिदूत हनुमान को आर्शीर्वचन से आप्यायित करती हैं क्योंकि उन्होंने थोड़े समय के लिए ही सही सीता राम का मानस समागम घटित कर दिया है। वह हनुमान से कहती हैं कि वह केवल एक महीना और अपने प्राणों को संभाल कर रख सकती है और उसके बाद उनकी रक्षा का भार राम की कार्य दीक्षा पर निर्भर है। जब हनुमान यह संदेश राम को निवेदित करते हैं तो महात्मा राम इससे भी महती वेदना को स्वर देते हुए कहते है कि अधर्म और अत्याचार की भूमि में अपनी पत्नी की दयनीय दशा की करुण कथा सुनने के बाद मैं क्षण भर भी अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर पा रहा हूँ। इन शब्दों के साथ राम हनुमान की आत्मनियत सेवा-भावना के प्रत्युपकार स्वरूप अपने आलिंगन की माला से उनको अलंकृत करते हैं।

संध्या से संध्या तक पूरे एक दिन के अंतराल में संपन्न सुंदर कांड का समस्त कार्यवृत्त इस सबल संकल्प को जन्म देता है कि लंका की ओर तुरंत रथ यात्रा का अभियान आरंभ करना है ताकि लंका और अयोध्या, दोनों में शांति और सुरक्षा स्थापित की जा सकें। जब युद्ध आरंभ होता है, तो सारे संघर्ष की केंद्र-बिंदु होने के कारण सीता को नाना प्रकार की प्रताड़नाओं, प्रलोभनों और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। यह सारा तंत्र रावण बनाता है और उसका पुत्र इंद्रजित उसे कार्यान्वित करता है। इन कुटिल योजनाओं का प्रतिरोध प्रकट करने पर विभीषण को निष्कासित कर दिया

गया और कुंभकर्ण को अपने अभिमत पर गंभीरता पूर्वक विचार करने का परामर्श देने की सुखद निद्रा में सुलाया गया। सत्य और विश्वासघात के बीच युद्ध आरंभ होता है–राम द्वारा प्रेषित शांतिदूत अंगद के आप्त वाक्य से। रावण अंगद की चेतावनी पर बिलकुल ध्यान नहीं देता और अपनी छल-कपट, छद्म और क्षुद्र आचरण आरंभ कर देता है। राम की बनी बनाई मृतक आकृति बनाकर वह उस प्राणहीन छवि को सीता के सामने प्रस्तुत कर टेढ़ी-मेढ़ी भाषा में कहता है कि पहले ही आक्रमण में हमारे योद्धाओं ने राम और लक्ष्मण दोनों को समाप्त कर दिया है। भोली-भाली सीता पहले इस पर विश्वास करती है। परंतु रणभूमि से प्राप्त सूचना पर तुरंत कार्यवाही करने की जल्दबाज़ी में रावण के उस स्थान से प्रस्थान करते ही वह कल्पित आकृति सीता की आँखों से ओझल होती है। इससे सीता समझ जाती है कि यह सब धोखा है। वास्तव में यह सूचना रण भूमि में सुग्रीव के प्रथम आक्रमण की है।

सीता का मनोबल नष्ट करने का दूसरा प्रयास तब होता है जब इंद्रजित अपने नागपाश के प्रयोग से राम और लक्ष्मण दोनों को बांध देता है। इस अवसर का लाभ उठाकर नागपाश में बेहोश लेटे हुए राम और लक्ष्मण को दिखाने के लिए सीता को पुष्पक विमान पर रणभूमि में भेजा जाता है। इस प्रसंग में भी सीता प्रत्यक्ष पर विश्वास करती है और अपने वैधव्य पर निष्ठुर नियति को दोष देती है। किंतु विमान में उन के साथ आई त्रिजटा नाम की राक्षसी सीता को विश्वास दिलाती है कि राम और लक्ष्मण दोनों जीवित हैं और स्वस्थ हैं क्योंकि उनके चेहरे बताते हैं कि उनमें चेतना है। इसके अलावा, पुष्पक विमान कभी विधवा स्त्री का वहन नहीं करती है। इस प्रकार सीता इस आघात से पुन: अपनी पूर्वस्थिति को प्राप्त होकर शांत चित्त बन जाती है।

अब की बार इंद्रजित् राम का मनोबल शिथिल करने के लिए सीता की एक कल्पित मूर्ति बनाकर हनुमान के सामने उस मूर्ति का वध करता है। उपने पिता रावण के कहने पर इंद्रजित् द्वारा परिकल्पित यह अंतिम कुतंत्र है। अब तो बुद्धिमान हनुमान को भी विश्वास होता है कि सचमुच इंद्रजित ने सीता का वध किया है। जब हनुमान यह समाचार राम को सुनाते हैं तो राम बेहोश हो जाते हैं। पर विभीषण राम को आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि यह सब असुर-माया है।

इंद्रजित् के वध से अत्यंत व्याकुल होकर रावण सीता का वध करने अशोक वन में प्रवेश करता है। परंतु सुपार्श्व के परामर्श पर रावण उस विचार को छोड़ देता है। राम-रावण के अंतिम युद्ध में राम की विजय होती है और रावण का संहार होता है। उस के बाद जब राम का संदेश लेकर हनुमान सीता के पास पहुँच जाते हैं तो सीता एक ऐसी उदात्त मनोभूमिका पर पहुँच जाती हैं जहाँ पर अद्‌भुत मानसिक संतुलन बृहत्साम का रूप धार करता है। हनुमान को अपनी ओर आते हुए देखते ही, वह मन, वचन और चेष्टा में मौन हो जाती हैं, चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, थोड़ी देर के बाद एक मास पहले हनुमान से हुए वार्तालाप का स्मरण करती हैं और फिर

अपने प्रभु की विजय का अनुमान लगाकर प्रसन्न हो पाती हैं। सीता माता की प्रसन्न गंभीर मुखमुद्रा को ध्यान से देखकर हनुमान सुखद समाचार सुगठित शब्दों में सुनाते हैं। फिर भी सीता अपनी गंभीरता बनाए रखती हैं। जब हनुमान राम का संदेश सुनाते हैं तब भी अपने को व्यक्त करने के लिए उनके पास सक्षम शब्द नहीं मिलते। अंत में जब हनुमान साहस बटोर कर पूछते हैं कि क्या हुआ माता जी, आप क्या सोच रही हैं? आप मुझ से बात क्यों नहीं कर रही हैं। ''तब जाकर अश्रुसिक्त स्वर में वे कहती है,'' मैं आनंद के अतिरेक से आत्म विभोर बन बैठी, हनुमान! थोड़ी देर तक मैं कुछ नहीं कह सकी। असल में मैं सोच रही थी कि इतना अमोध उपकार मेरा तुमने किया है तो इसके लिए मैं तुम को क्या दे सकती हूँ और देने के लिए मेरे पास है भी क्या? जानकी के इन शब्दों से हनुमान अपने को अत्यंत संभावित अनुभव करते हैं। परंतु सीता की चारों तरफ अभी भी हिंसक असुरांगनाओं को देखकर सीता से निवेदन करते हैं कि एक साल से आप को परेशान करनेवाली इन दुष्ट राक्षसियों को क्षणभर में समाप्त करने की मुझे अनुमति दें। इस पर धर्मशीला देवी कहती है, 'नहीं, यह उचित नहीं है—क्योंकि उन्होंने जो कुछ किया, वह अपने मन से नहीं किया। उनको इस प्रकार करने को कहा गया है और उन्होंने केवल प्रभुता के आदेश का पालन किया है।' वह आगे कहती हैं, कि उनको यह सारी यातना सहनी पड़ी है, केवल अपनी निष्ठुर नियति के कारण और इसके लिए किसी को दोषी ठहराना उचित नहीं है। जानकी की उदात्तता उस समय महोन्नत शिखर को स्पर्श करती है जब वे कहती हैं, 'बेटा, इस संसार में भला कौन ऐसा है जिसने कभी कोई अपराध नहीं किया हो?'' वह हनुमान को सलाह देती हैं कि जो कुछ हुआ, सब भूल जाओ, इन भोली-भाली राक्षसियों को क्षमा करो। वह तो केवल अपने स्वामी श्रीराम के प्रसन्न मुखमंडल को यथाशीघ्र देखना चाहती हैं और हनुमान से अनुरोध करती हैं कि यह बात राम को मेरी ओर से कह देना।

जब यह संदेश राम को मिल जाता है तब वे विभीषण से कहते हैं कि सीता को उनके पास ले आएं। ताकि सभी लोग उन के साथ सीता को देख सकें। वे यह भी चाहते हैं कि सीता मंगल स्नान करके अच्छे वस्त्र और सभी प्रकार के आभूषण पहनकर आएँ। यद्यपि सीता इन औपचारिकताओं पर समय व्यर्थ करना नहीं चाहती है और तत्काल राम के दर्शन करना चाहती हैं, फिर भी विभीषण उनसे निवेदन करते हैं कि इस विषय में राम के आदेश का विधिवत् पालन करना समीचीन है। तद्नुसार सीता राजमर्यादा का पालन कर राम से मिलने के लिए निर्धारित स्थान पर विभीषण के साथ पहुँच जाती है। कुछ अटपटे लगनेवाले इन सभी लक्षणों को देखते हुए भी सीता आनंद, आश्चर्य और अनुराग की मिली जुली भावना लेकर राम के पास पहुँचती हैं। काफी लंबी अवधि के पश्चात् प्रभु के दर्शन मात्र से उनका मुख मंडल बादलों से मुक्त पूर्ण चंद्रमा के समान सुशोभित होता है। उनकी सारी थकावट-शारीरिक और मानसिक-पलभर में गायब हो जाती है और वह बहुत बड़ी अपेक्षाओं के साथ अपलक नयनों से राम

की ओर देखती रह जाती हैं। किंतु लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमान इस अभूतपूर्व अप्रसन्नता का परिवेश देखकर चिंतित हो जाते हैं और समझ नहीं पाते कि उनके स्वामी की मुख-मुद्रा में अचानक इतना परिवर्तन क्यों हुआ। सीता भी राम की ओर उत्कंठा और उद्विग्नता से देखने लगती हैं और राम की बात सुनने के लिए लालायित होने लगती हैं।

वास्तविक परीक्षा की रूक्षता यहीं से आरंभ होती है। राम अपने सामने सर झुकाकर खड़ी हुई सीता को संबोधित करने लगते हैं—एक पति के रूप में नहीं, बल्कि जगत्पति के रूप में। अपनी या अपनी सहधर्मचारिणी की प्रतिष्ठा पर कोई ध्यान दिए बिना, राम स्पष्ट शब्दों में उनसे कहते हैं कि उन्होंने युद्ध में जो विजय प्राप्त की है, वह अपनी पत्नी को पुनः प्राप्त करने के लिए नहीं, बल्कि मुख्यतः उनके प्रति जो घोर-अपमान हुआ है, उसको धो डालने और संसार में अमंगल को दूर कर मंगल भावना को स्थापित करने के अपने संकल्प को साकार बनाने के लिए किया था और इस अनुष्ठान में सुग्रीव, हनुमान और विभीषण का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

ये शब्द सीता के नयनों को विशाल और अश्रुपूरित बना देते हैं। इतनी लंबी यातना और विरह वेदना के पश्चात् इस प्रकार की बातें सुननी पड़ेगी, इस बात की उन्होंने कल्पना तक नहीं की थी। इससे भी अधिक कठोर आघात उन्होंने तब अनुभव किया जब राम ने आगे चलकर यह कहा कि वे पराए घर में इतने लंबे समय तक बैठी औरत को वापस नहीं ले सकते और इस बात की संभावना भी बहुत कम है कि रावण जैसे विषयासक्त व्यक्ति के विपक्त नयनों से सीता जैसी परम सुंदर स्त्री अपने को बचा सके। अंतिम प्रहार के रूप में राम यहाँ तक कह देते हैं कि अब सीता लक्ष्मण, भरत, सुग्रीव अथवा विभीषण में से जिसको चाहे उसका वरण कर सकती है।

राम के प्राणों में प्राण बनकर रहनेवाली पतिप्राणा सीता को विश्वास नहीं हो पाया कि वह ये वाक्य राम के मुँह से सुन रही है। ये शब्द उनके गले उतर नहीं पाएं। उनका मन चकरा गया। उनको ऐसा लगा कि उनको किसी ने जड़ से उखाड़ फेंका है, जैसे किसी हाथी ने किसी लता को पेड़ से अलग कर दूर फेंक डाला है। वह फूट-फूट कर रोने लगती हैं ओर इतनी खुली जगह पर सब के समाने ऐसी बातें सुनकर वह शर्मिंदा होकर अपने में सिमट जाती हैं। राम के कर्कश शब्दों के शर-स्पर्श से मर्माहत मानिनी स्त्री अविरल अश्रुधारा बहाने लगती हैं और जब आँसू सूख जाते हैं तो चेहरा साफ करके अपने पति को संबोधित करने का साहस बटोर कर कहती है : ''स्वामी, मुझे एक सामान्य स्त्री समझकर आप स्वयं एक प्राकृत पुरूप के रूप में इस प्रकार की बातें क्यों कर रह हैं प्रभु ! मैं वैसी नहीं हूँ, जैसी आप मुझे समझ रही हैं। यदि मेरे बारे में आपका इतना निकृष्ट विचार था तो आप उसी समय हनुमान के द्वारा इस बात को संकेत मात्र कहलवा देते तो आप को इतना श्रम नहीं हो जाता और मेरा यह पार्थिव शरीर भी अब तक समाप्त हो जाता। मुझे यह देखकर बड़ा दुःख हो रहा है कि आपको मेरे भीतर मात्र एक स्त्री दिखाई दे रही है, अपनी पतिपरायण

पत्नी नहीं। हमारे पवित्र वैवाहिक सम्बंध की सारी बातें आप भूल गए, और मेरी श्रद्धा और निष्ठा को भी आपने भुला दिया।''

इस विनीत और अनुनयात्मक निवेदन का कोई प्रत्युत्तर राम से न मिलने पर सीता लक्ष्मण की ओर मुँह करके कहती है कि मेरे लिए एक चिता बना दो क्योंकि मेरे लिए अब वही एक मात्र सहारा है और इस संकट का एकमात्र समाधान है। इस रोषावेश से अत्यंत व्याकुल लक्ष्मण राम की ओर देखते हैं ओर उनके चेहरे के इशारें के अनुरूप तदनंतर कार्य करते हैं। मिथिलेश की कन्या राम से भी दया की याचना नहीं करती है। वह केवल न्याय मांगती है जो कि उनको नहीं मिला। इसलिए वह अपने शरीर को चिता में समर्पित करने के लिए अपने मन को तैयार कर लेती है क्योंकि उनके पति को अब उस की आवश्यकता नहीं है।

अग्निदेवता से वह प्रार्थना करती है :

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वत: पातु पावक: ॥

(जैसे मेरा हृदय कभी भी राम से हटकर और कहीं नहीं जाता है, वैसे ही समस्त संयम को साक्षी और सबको पवित्र करनेवाले अग्निदेवता सर्वथा मेरी रक्षा करे।)

इस प्रकार तीन और श्लोकों का विधिवत् पाठ करने के पश्चात् सीता दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार की मुद्रा में निर्भय मन से चिता में प्रवेश करती हैं और वहाँ पर एकत्रित विशाल जनसमुदाय के साथ-साथ अंतरिक्ष के अगोचर दैवी निरीक्षक भी इस दृश्य को देखते रहते हैं। सभी दिशाओं में भीषण हाहाकार होता है। राम भी हृदय में आंतरिक वेदना से ग्रस्त होने के कारण समाधिस्थ होकर भीतर की किसी रहस्यमयी चित्-शवित पर गंभीर चिंतन में मग्न बैठते हैं। इतने में सभी देवता एकत्रित होकर राम से अनुरोध करते हैं कि वे सीता की सहज सिद्ध पवित्रता को पहचानकर उनको स्वीकार करें क्योंकि अग्नि जितनी पवित्र है, उतनी ही पवित्र जानकी भी है। अंत में अग्नि देवता स्वयं आकर सीता को राम के हाथों में समर्पित करते हुए कहते हैं कि यह लो, आप की सीता जिसको कोई पाप स्पर्श तक नहीं कर सकता। इसलिए मैं आपको आज्ञा देता हूँ कि आप अपनी कठोरता छोड़कर इस को स्वीकार करें। इस पर राम अग्निदेवता की आज्ञा का पालन करते हैं ओर अन्य देवताओं की इच्छा भी पूरी करते है। उनसे वे कहते हैं कि मैने जान बूझकर सीता की पवित्रता की यह परीक्षा करवा दी ताकि संसार स्वयं प्रत्यक्ष देख सके कि वह कितनी पवित्र है और उसका पति कितना धर्मनिष्ठ है।

इस प्रकार अग्निपरीक्षा का समापन सुखांत होता है। किंतु सीता को चिता में प्रवेश करते हुए देखकर राम का मौन रहना और सबके सामने सीता को कठोर शब्दों से संबोधित करना राम के चरित्र की आलोचना का आधार बनता है और आज भी राम के अनन्य आराधक तक राम के इस आपवादिक आचरण की आलोचना करते हैं।

परंतु राम के चेहरे का संकेत पाकर लक्ष्मण का अपनी सूक्ष्म बुद्धिता से काम करना इस पहेली का कुछ समाधान प्रस्तुत करता है। संभवत: सीता भी उस समय मन ही मन अनुभव कर रही होंगी कि स्वर्ण मृग मारीच का आर्तनाद सुनकर लक्ष्मण को राम की रक्षा के लिए प्रस्थान कराने में मेरी अतिमात्र आतुरता और उसी प्रसंग में लक्ष्मण के चरित्र पर शंका प्रकट करना आदि राम के मन में होंगे और इसी की प्रतिक्रिया अब हो रही है ताकि मैं अपनी गलती समझ लूँ। उसी का यह संभवत: प्रायश्चित और परिमार्जन है। चाहे कारण कुछ भी हो, साध्वी तपस्विनी सीता पर अब जो कुछ बीता, वह सब के लिए अशोभनीय है। पर साथ ही यह भी सही है कि सीता जैसी उत्तम साध्वी ही इस प्रकार की कठोर परीक्षा में खरी उतर सकती है।

इससे भी कठोर एक और परीक्षा सीता की सहनशीलता की प्रतीक्षा कर रही है। यह पहले की परीक्षा की अनुपूरक है। लंका में जो अग्निपरीक्षा हुई थी, उसको केवल वहाँ पर उपस्थित कुछ लोगों ने देखा था। किंतु अयोध्या के नागरिक और सारी प्रजा सीता की पवित्रता के सम्बंध में अभी शंकालु हैं। इसने एक व्यापक लोक-प्रवाद को जन्म दिया। नरेश के रूप में राम इस की उपेक्षा नहीं कर सके। इसलिए सीता का परित्याग करना पड़ा—बड़ी अनिच्छा और निर्ममता के साथ। यहाँ भी सीता उच्चतर नैतिक शिखरों पर अपने को प्रतिष्ठित कर लेती है। यद्यपि परित्याग के संबंध में उनको बहुत देर से पता चलता है। वह किसी को इसका दोष नहीं देती है—न राम को और न लक्ष्मण को। इसके अलावा, वह राम के निर्णय की सराहना करती हैं क्योंकि यह निर्णय राज्य तथा राजा की मर्यादा और प्रतिष्ठा के अनुरूप है और आदर्श नरेश के लिए प्रजा सर्वोपरि है हालांकि महारानी के लिए राजा के हृदय पर सर्वाधिक अधिकार होता है। किन्तु राम की योग्यतम जीवन सहचरी के रूप में सीता अपनी सुख-सुविधाओं को नहीं, बल्कि जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं को भी त्यागने को तैयार होती हैं—अयोध्या और मिथिला, दोनों राष्ट्रों के हित में। ये राष्ट्र दोनों उनके हैं और वह इन राष्ट्रों की हैं।

यह सब कुछ होते हुए भी राम इस विषय में भी फिर अपनी पतिपरायणा पत्नी के प्रति न्याय नहीं कर पाते हालांकि उनकी विवशता समझ में आती है। पर वे अपनी दंडनीति में थोडा समझौता तो कर सकते थे क्योंकि उनकी पत्नी गर्भवती है और अयोध्या के भावी नरेश (नरेशों) को जन्म देनेवाली है। जो भी हो, विडंबना इस बात की है कि जिस महारानी का प्रसव राजमहल में उच्चतम सुख सुविधाओं के साथ होना था, वह प्रकृति की दया पर निर्भर है। पर यह प्रकृति माता के कारुण्य का ही परिणाम था कि इसके लिए सबसे अधिक अनुकूल और आदर्श स्थान और व्यक्ति का सान्निध्य प्राप्त हुआ। महर्षि वाल्मीकि इसी अवसर की उत्सुक प्रतीक्षा कर रहे थे। सद्गुण, सौन्दर्य और सौशील्य की परम आदर्श नारी जानकी के लिए जीवन का अंतिम आश्रय महर्षि वाल्मीकि का आश्रम बन जाता है।

जगदीश्वर की वाणी जगत् की व्यथा में मुखरित होती है। यह चिरंतन सत्य औदार्य और तपस्या की प्रतिमूर्ति मैथिली के जीवन के अंतिम चरण में साकार होकर सामने आता है। उनके दोनों पुत्रों की शिक्षा-दीक्षा महर्षि वाल्मीकि के पर्यवेक्षण में संपन्न होती है। ऐसा सुयोग राम जैसे राजाधिराज भी अपने पुत्रों के लिए उपलब्ध नहीं करा पाते। राम के इन प्रतिरूपों को अपने आश्रम में पलते-बढ़ते देखकर वाल्मीकि रामायण के प्रणयन के लिए प्रेरणा प्राप्त करते हैं। राम-पत्नी के सात्विक सान्निध्य से इस प्रेरणा को और भी अधिक बल मिलता है। देवर्षि आदर्श मानव के रूप में प्रतिपादित कर वाल्मीकि को परामर्श देते हैं कि उन्हीं को वे अपना काव्य-नायक बना लें। नायिका तो उनके आश्रम में ही हैं। वाग्देवी के स्वामी विश्वविधाता वाल्मीकि को सरस्वती के सतत साक्षात्कार का वरदान देकर उनकी दृष्टि को सबल और वाणी को सरस बनाते हैं। जब काव्य बन जाता है तो उसको काव्य नायक के पुत्र ही मधुर कंठ में सर्वत्र संप्रसारित करने का कार्य करते हैं। अयोध्या के अघोषित राजकुमारों का यह सम्मोहक काव्य-गायन एक दिन काव्य नायक के कानों तक पहुँच जाता है।

उस समय राम अश्वमेध का अनुष्ठान कर रहे थे। यज्ञशाला में नाना देशों के नरेश, राज प्रमुख, प्रजा-प्रतिनिधि और ऋषि-मुनि आसीन थे। दोनों राजकुमार लव और कुश जब रामकथा रसायन से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते हैं, प्रशंसा के स्वर सभास्थली को रसाप्लावित कर देते हैं। राम को यह जानकर सुखद आश्चर्य होता है कि वे दोनों बालक उन्हीं के आत्मज हैं। परंतु उनको उसी रूप में उसी समय वे स्वीकार नहीं करते। वे वाल्मीकि को अपने यहाँ आमंत्रित करते हैं और उनसे अनुरोध करते हैं कि वे सीता को भी साथ ले आएँ ताकि वह सबके सामने अपने मातृत्व और सतीत्व को प्रमाणित कर सकें। वाल्मीकि इस आमंत्रण को सहर्ष स्वीकार करते हैं क्योंकि सीता के लिए भी अपने पति के आदेश का पालन करने से बढ़कर जीवन में और कोई पावन कर्त्तव्य नहीं हो सकता हालांकि जीवन भर उन्होंने कठोर यातना को एक प्रकार की तपस्या मानकर स्वीकार किया है।

राम के सहज उत्तराधिकारी दो पुत्र रत्नों को जन्म देने के पश्चात् अपने पवित्र पतिव्रत्य को प्रमाणित करने के लिए जब राम के दरबार में राम पत्नी सीता खड़ी हो जाती है तो उस रोमांचक दृश्य को देखकर सभी सभासदों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। समय की गति के साथ अब साध्वी सीता सच्चे अर्थों में वैदेही (देह बुद्धि से अतीत) बन गई है। इस आध्यात्मिक परिवेश में वह अपनी माँ भूदेवी से अनुरोध करती हैं कि अब अपनी गोद में अपनी बेटी को थोड़ा-सा स्थान दें। वह अपनी माँ को याद दिलाती हैं कि उसी माँ की कोख से प्रकट होकर उनकी इस बिटिया ने इस ग्रह देवता के आश्रय में जीनेवाले जीवधारियों को प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ यह समझाया है कि नर और नारी मानव-जीवन के दो परम सत्य हैं और आशा और निराशा के झूले में उनको झुलानेवाले सुख-दु:ख इसी परम सत्य के प्रकट रूप हैं। ये कभी कच्चे और कठोर दिखाई दे सकते हैं, पर वास्तव में वे स्वभाव से परिपक्वता के प्रेरक तत्व हैं।

धरती माता को संबोधित कर व्यक्त किए गए उनके अंतिम उद्गार है :

यथाहं राघवादन्यं मनसापिन चिंत ये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माध्वी देवी विवरं दातुमर्हति॥
यथैतत् सत्य मुक्तं में वेदिम रामात् परंनच।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥

(यदि मैं रघुकुल के यशस्वी राजा राम को छोड़कर और किसी का मन में कभी चिंतन तक नहीं करती तो मेरी माँ धरती मुझे अपनी गोद में स्थान दे।

यदि मैं मन, कर्म और वाणी द्वारा केवल राम की आराधना करती हूँ तो मेरी माँ धरती मुझे अपनी गोद में स्थान दे।

मेरा यह कहना कि मैं राम को छोड़कर और किसी अन्य पुरूष को नहीं जानती हूँ यदि सच है तो मेरी माँ धरती मुझे अपनी गोद में स्थान दे।)

अपने जीवन संगी राम की इच्छा और आज्ञा के अनुसार सीता अपनी पवित्रता और अनन्यता को ऋषियों और नागरिकों के सामने प्रमाणित करने के लिए राजदरबार में अवश्य आई हैं--पर केवल अपनी माँ धरती की गोद में हमेशा के लिए विलीन होने के लिए, न कि अयोध्या लौटकर ऐहिक सुख भोगने के लिए। साथ ही इस साध्वी ने इस वैदिक ऋचा की सार्थकता को अपने आचरण के द्वारा निरूपित किया है कि मर्त्य अमर बनता है, केवल कर्मकांड या प्रजनन या भौतिक संपत्ति के बल पर नहीं, बल्कि अमरत्व प्राप्त होता है त्याग, विराग और लौकिक विषय वासना से स्वैच्छिक निवृत्ति के कारण।

मैथिली की माता माधवी वास्तव में भूलोक में रहने वाली समस्त प्रजा की जननी है दिन रात दर्शन-प्रेमियों को दर्शन देती हैं और अपनी प्रिय तनया परमांगना को गले लगाकर तुरंत वापस चली जाती है।

अपनी पतिप्राणा पत्नी सीता को माधवी की मधुमय छाया में लीन होती देखकर राम के अश्रुपूरित नयन शून्य में परम शून्य को व्यर्थ ही खोजते रहते हैं, पर अपने सुख की बिलकुल चिंता किए बिना अपना सर्वस्व अपने पति को महान् बनाने के लिए समर्पित करनेवाली सीता नहीं दिखाई देती। इस परमांगना ने अपना सारा जीवन महान् कार्य में लगाया था जो कि केवल स्त्री ही कर सकती है। राम इसलिए महान् है क्योंकि सीता उन से भी महान् हैं। इसीलिए 'रामायण' की सार्वत्रिक प्रशांसा करते हुए लोग इसी अमर काव्य के सम्बंध में कहा करते हैं :

"सीतायाश्चरितं महत्"

4

त्रितय

अयोध्या से मिथिला, किष्किंधा और लंका तक राम के अयन को आगे बढ़ाने में रामायण के तीन प्रमुख पात्रों ने महत्वपूर्ण योगदान किया है। वे हैं : विश्वामित्र, लक्ष्मण और हनुमान।

राम की अंतर्निहित दिव्यता को आविष्कृत कर मानव-कल्याण के लिए विश्व में उसको संप्रसारित करने का श्रेय विश्वामित्र को ही मिलता है। एक समय था जब विश्वामित्र तपोनिष्ठा में वशिष्ठ के प्रतिद्वंद्वी थे। परंतु राम को अपने साथ भेजने में संकोच करनेवाले दशरथ को इसमें निहित लोकहित की भावना के संबंध में आश्वस्त करने के लिए विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षि वशिष्ठ की सद्भावना और साधु सम्मति का ही आश्रय लिया है। आतंकवादी राक्षसों से अपने यज्ञ की रक्षा कराने में विश्वामित्र ने राम का सहयोग केवल दस दिन के लिए मांगा था, पर उनकी यात्रा की अवधि को चौदह दिन और बढ़ाकर जानकी से दाशरथी का विवाह भी कराया। स्थूल दृष्टि से देखने पर ऐसा लगता है कि ताड़का के संहार से लेकर अयोध्या के चारों राजकुमारों का पाणिग्रहण मिथिला की चार समानुराग राजकुमारियों के साथ संपन्न कराने तक की सारी घटनाएँ यों ही अपने आप घटित हुई हैं। परंतु ध्यान से देखने पर पता चलता है कि इन सभी गतिविधियों के पीछे कोई दैवी वरदहस्त काम कर रहा है जिसको विश्वामित्र के ऋषि मानस ने परिकल्पित और आयोजित किया है। विश्वामित्र तो तपस्या के तापस रूप थे। अहल्या का शाप-विमोचन भी पहले से परिकल्पित योजना है जैसा कि मिथिला में शतानंद और विश्वामित्र के संवाद से स्पष्ट होता है। राम को आगे चलकर जो महान् कार्य करने हैं, उनके लिए आवश्यक सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परिसंपदा प्रदान करने के लिए ही विश्वामित्र इस पूर्वरंग का आयोजन करते हैं ताकि अयोध्या लौटने तक उनको इतनी साधन-संपत्ति स्वाधीन रहे जो दंडक और लंका में घटित होनेवाले विशिष्ट कार्यक्रम में काम आ सके।

यहाँ पर वाल्मीकि के अध्येता को दो बारीक बातों पर ध्यान देना है। पहली बात यह है कि विश्वामित्र ने अपनी कार्य-सिद्धि के लिए केवल राम का ही सहयोग मांगा था, पर उनके पिता दशरथ उनके भाई लक्ष्मण को भी साथ में भेज देते हैं और

विश्वामित्र इस अतिरिक्त सहयोग को सुखद मौन भाव से स्वीकार करते हैं। दूसरी बात यह है कि सीता के साथ राम का विवाह संपन्न होते ही वे अपने निवास लौट जाते हैं। इस प्रकार अयोध्या से मिथिला और मिथिला से अयोध्या की दोनों यात्राओं में तीन यात्रियों का त्रितय बराबर बना रहता है। विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण की त्रयी मिथिला पहुँचती है तो सीता, राम और लक्ष्मण की एक नई त्रयी अयोध्या में प्रवेश करती है। इस प्रकार राम के संपूर्ण अयन में—जिसको वाल्मीकि 'रामायण' की संज्ञा देते हैं—अंतिम विजय और सीता की पुन: प्राप्ति तक त्रितय का यह समाहार किसी न किसी रूप में बराबर बना रहता है। इस सार्वत्रिक त्रिक, त्रितय या तीन मूर्ति की परिकल्पना की ओर वाल्मीकि एक हल्का-सा इशारा देते हैं जब वे राम और लक्ष्मण को साथ लेकर चलनेवाले विश्वामित्र के पीछे उसी तरह जा रहे थे, जैसे ब्रह्माजी के पीछे दोनों अश्विनी कुमार चलते हैं और तीन-तीन फनवाले दो सर्पों के समान दिख रहे थे।

मिथिला जाने के रास्ते में राम को तीन विभिन्न प्रकृतियों की नारियां दिखाई देती हैं। इनमें से पहली है ताटका जो कि तमो गुण की आसुरी मूर्ति है और जिसका राम ने संहार कर जन-कल्याण किया है। दूसरी है अहल्या जो रजोगुण की भस्मराशि बन कर शाप से मुक्त होने के लिए तप रही थी जिसका राम ने उद्धार किया और उनके दांपत्य जीवन को पुनर्वासित किया। तीसरी है सीता-सौंदर्य, वैभव और सश्रीकता की प्रतिमूर्ति जिसको राम ने अपनाया और हृदय से हृदय का स्वागत किया और सौभाग्य का सम्मान दिया। यह भी एक त्रयी है।

दशरथ की तीन रानियां भी त्रयी का एक और समाहार बना लेती हैं। वाल्मीकि इन तीनों को ह्री, श्री और कीर्ति के सांकेतिक प्रतीक बनाते हैं। तीनो में सर्वाधिक संस्कार संपन्न कौसल्या को बीजाक्षर ह्री से मिलाया गया है और ललित भाषिणी लक्ष्मण माता को 'श्री' की प्रतिकृति के रूप में प्रस्तुत किया गया। मित भाषिणी, मृदु भाषिणी, कोमल और निर्मल हृदय, आचरण में नि:स्वार्थ और परहित की भावना और जो कुछ अच्छा है, हितकारी है और कल्याणकारक है उसका संवर्धन करने में सहयोग देनेवाली सुमित्रा वास्तव में तीनों रानियों की संधायिका है। उनके दोनों पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न-समर्पित मन से राम और भरत की सेवा में लगे रहते हैं। वह कैकेयी के विरूद्ध कभी एक शब्द भी नहीं कहती जबकि वसिष्ठ जैसे ब्रह्मर्षि तक सब के सामने उन की निंदा करते हैं। राम और सीता के साथ वह अपने पुत्र लक्ष्मण को वनवास के लिए भेजते समय हृदयपूर्वक आशीर्वाद देती हैं। उनकी मंत्रपूरित मंगलकामना है :

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥

(राम को अपने पिता दशरथ के समान देखो और जानकी को मेरे समान मातृत्व की भावना से देखो। वन को अयोध्या समझो। जहां भी जाओ, सुखी रहो।)

'सीता को मेरे समान समझो' कहने में सुमित्रा अपने को सीता से अभिन्न और एकात्मक मानती हैं। इसीलिए वाल्मीकि दोनों को 'श्री' का प्रतीक बताते हैं। वास्तव में दोनों की सहज सात्विकता संसार की समस्त सश्रीकता को अपने में समेट लेती है।

इस त्रितय में तीसरा पात्र कैकेयी है। इनको वाल्मीकि 'कीर्ति' की उपाधि देते हैं। कवि की इस परिकल्पना से ऐसा प्रतीत होता है कि कीर्तिकामिनी कैकेयी का वास्तविक नाम ही कीर्ति है--'कीर्ति, तुम्हारा नाम कैकेयी।' ध्यान देने की बात है कि वाल्मीकि कैकेयी के लिए कोई बीजाक्षर से युक्त सांकेतिक नाम नहीं देते क्योंकि उनकी दृष्टि अधिकार, आडंबर, अहंकार, वैभव आदि से युक्त लालसामय जीवन के तात्कालिक आनंद तक ही सीमित रहती है, उससे आगे आत्मा, परमात्मा की बात वह सोच तक नहीं पातीं।

वनवास के लिए प्रस्थान करते समय भी फिर एक और 'त्रितय' अपने आप संगठित हो जाता है। ये तीनों पारिवारिक जीवन और राजभोग का प्रलोभन छोड़कर कर्त्तव्य भावना, समर्पण और निर्लिप्ता के साथ वन्य जीवन का स्वागत करते हैं। कैकेयी की वर-याचना में सीता और लक्ष्मण का उल्लेख नहीं था। उनको वन जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। किंतु ये दोनों राम की सेवा करने और उनके महान् संकल्प को सार्थक बनाने के लिए अपनी इच्छा से वनवास के लिए तैयार हो जाते हैं। राम उनको अपने साथ ले जाना नहीं चाहते थे क्योंकि उनको सहज रूप से प्राप्त सुख से वंचित करना उनको अच्छा नहीं लगा। परंतु महाकवि का महामानव कभी भी एकांत नहीं रह सकता। कम से कम तीन व्यक्तियों के बीच ही वे अपने को हमेशा पाते हैं। लक्ष्मण तो नित्य सहायक हैं ओर तीसरे व्यक्ति का चयन समय-सापेक्ष होता है। मिथिला की यात्रा में यह तीसरा स्थान विश्वामित्र ने लिया और अब वनवास के समय सीता को यह अवसर मिला। यह देखकर आश्चर्य होता है कि इस संदर्भ में सीता से भी अधिक प्राथमिकता लक्ष्मण को मिली है हालांकि सीता ने लक्ष्मण से भी पहले वन जाने के लिए राम की अनुमति विधिवत् प्राप्त कर ली। बाद में लक्ष्मण ने होशियारी से यह अनुज्ञा हासिल की। जो हो, अंततः तीनों प्रस्थान के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं—पर किधर ?

जहाँ तक प्राथमिकता का प्रश्न है, सीता और लक्ष्मण दोनों का अनुरोध साग्रह और साधिकार है हालांकि सीता का अनुरोध पहले सामने आता है और इसलिए स्वीकृति में भी उसका स्थान प्रथम है। लक्ष्मण बाद में इसकी चर्चा करते हैं। किंतु लक्ष्मण की बुद्धि सूक्ष्म है। जब से कैकेयी और दशरथ का संदेश लेकर राम को अंतः पुर ले जाने सुमंत्र आए, तब से लक्ष्मण राम के साथ ही रहते हैं, केवल अंतःपुर में नहीं जाते। जब राम अपनी माता कौसल्या को समझा रहे थे कि पिताजी के आदेश का पालन करना ही धर्मसम्मत है, उस समय लक्ष्मण वहीं पर थे। बनवास की बात छोड़कर घर में अपने पास रहने का जब कौसल्या आग्रह कर रही थी और राम उसे मानने को तैयार नहीं हो रहे थे, उस समय लक्ष्मण के मन में कुछ क्षोभ उत्पन्न हो रहा था।

यहाँ तक कि एक उदात्त पिता के उदात्ततम पुत्र के प्रति जो घोर अन्याय हो रहा है, उस के विरूद्ध एक न्याय सम्मत विद्रोह खड़ा करने की बात भी वे कह रहे थे। परंतु राम संतुलन को बड़ी सतर्कता के साथ बनाये रखते हैं और सत्य, धर्म, पारिवारिक प्रतिष्ठा और मानव-मर्यादा का सात्विक समर्थन करते हैं। अंततः वे माता की मंगल कामना प्राप्त कर ही लेते हैं। लक्ष्मण के भावावेश को शांत करने के प्रयास में राम उन से कहते हैं :

धर्ममाश्रय माँ तैक्ष्ण्यं मद्बुद्धिरनुगम्यताम्।

(धर्म का आश्रय लेकर अपनी उग्रता और व्यग्रता को छोड़ो। मेरी चिंतन-सरणी का अनुसरण करो।)

राम के इन शब्दों को लक्ष्मण अक्षरशः अपनाते हैं। तभी तो उन्होंने न केवल उनकी बुद्धि (विचार-सरणी) का अनुगमन किया है, बल्कि वनवास के मार्ग में उनके साथ चलने का भी संकल्प किया है। इसी आधार पर वे राम से कहते हैं कि मुझे वन जाने की अनुमति आप पहले ही दे चुके हैं इसलिए अब इस प्रश्न पर पुनर्विचार करने का कोई प्रसंग ही नहीं बनता। अब राम निरुत्तर हो जाते हैं।

सीता और लक्ष्मण दोनों राम के अयन में आगे-आगे रहकर उनके मार्ग में आनेवाली रुकावटों को दूर करने में तत्परता दिखाते हैं। अंतर केवल इतना ही है कि सीता स्पष्ट शब्दों में कहती है कि मैं आगे-आगे चलकर आप के रास्ते को 'कुश-कंटकों' से मुक्त कर देती हूँ (अग्रतस्ते गभिष्यामि मृद्नंती कुशकंटकान्) जबकि लक्ष्मण बड़ी विनम्रता से कहते है कि मैं आप का अनुसरण करते हुए आगे-आगे धनुष हाथ में लेकर चलूँगा (अहंत्वानुगमिष्यामि बनमग्रे धनुर्धरः)। दोनों के लिए उपयुक्त शब्दों का प्रयोग कराने में वाल्मीकि की वाक्-संस्कृति का पता चलता है। अंत में जब सुमंत्र प्रस्थान के लिए रथ लाकर त्रितय के सामने खड़ा करते हैं तो सीता दोनों राजकुमारों के वस्त्र, आयुध तथा विदाई के समय श्वशुर जी द्वारा प्रेम स्वरूप दिए गए वस्त्र और आभरण लेकर पहले रथ पर जा बैठती हैं। सीता के रथ पर बैठ जाने के बाद दोनों राजकुमार भी बैठ जाते हैं। रामयण की प्रधान पात्र त्रयी (सीता, राम और लक्ष्मण) का अयोध्या छोड़कर वन चलने का यह दृश्य महाकवि वाल्मीकि की गहन अंतर्दृष्टि के स्पर्श से इतना मार्मिक बन जाता है कि इस प्रसंग का प्रत्येक संचलन, कथन और भावुक परिवेश मानव जाति के इतिहास में जनमानस पर एक अमिट मुद्रा अंकित कर देता है।

राज-परिवार के ये तीन सदस्य जब अयोध्या से प्रस्थान करते हैं तो सारी राजधानी उनके पीछे चलने का प्रयास करती है। अधिकांश नागरिक पहली रात तमसा नदी के तट पर इस प्रधान पात्र त्रयी के सान्निध्य में बिताते हैं। राम किसी न किसी प्रकार इस भोली-भाली जनता को भुलावा देकर उनसे कहीं दूर अपने रथ को आगे बढ़ा देते हैं। गंगा नदी को पार करने के बाद सुमंत्र को भी बड़ी अनिच्छा से अयोध्या लौटना पड़ता है। अब वनवासी त्रितय एकदम अकेला रह गया है।

लक्ष्मण का राम के साथ वन चलना मात्र संयोग नही था। वनवास में राम के साथ उनका सहायन नियति का निर्णय था। उनकी मां सुमित्रा इसी बात को साधु भाषा में कहती है। उनका वाक्य था—''बेटा, तुम तो वनवास के लिए पैदा हुए हो'' (सृष्टस्त्वं वनवासाय)। राम के राजतिलक के लिए निर्धारित दिन यदि भरत अयोध्या में होते तो बात कुछ और ही होती। उस दशा में गति-विधियां जिस दिशा में चलतीं इसकी कल्पना करना भी कठिन है। किंतु किस प्रकार घटना घट रही थी, उसमें एक बात स्पष्ट हो रही थी कि भरत के अयोध्या लौटने से पहले ही राम का राजतिलक संपन्न हो, यह दशरथ की उत्कट कामना थी। साथ में कैकेयी का भी साग्रह संकल्प था कि भरत के लौटने से पहले ही राम अयोध्या छोड़कर चलें। इसलिए कोई दैवी संकल्प इस घटनाक्रम के पीछे सक्रिय है। इसी को वाल्मीकि अपनी भाषा में 'यदृच्छा' कहते हैं। जो घटना अपने आप अपने ढंग से घटती है, वह इसी कोटि में आती है।

भरत बार-बार वनवास का स्वागत करते हुए राम के स्थान पर स्वयं चौदह वर्ष की वनवास दीक्षा स्वीकार करने की अपनी प्रबल इच्छा प्रकट करते हैं। राम को अयोध्या वापस बुलाने और सिंहासन स्वीकार करने के लिए वे राम से अनुनय-विनय करते हैं। किंतु सत्य को ही अपना पराक्रम समझकर चलनेवाले राम बदली हुई गतिविधियों से समझौता करने के लिए तैयार नहीं होते, बल्कि भरत को ही यह समझाने का प्रयास करते हैं कि सत्यसंध राजा दशरथ की सत्यनिष्ठा का सम्मान करना ही उनके पुत्रों का प्रथम और पावन कर्तव्य है। अंतत: भरत को राम के अयोध्या लौटने तक उनका प्रतिनिधित्व करने के लिए उनके द्वारा प्रदत्त पादुकाओं को लेकर अयोध्या लौटना ही पड़ा।

इस प्रकार राम, सीता और लक्ष्मण चौदह वर्ष के वनवास की पूरी अवधि विधिवत् व्यतीत करने के लिए कृतसंकल्प होकर प्रस्थान करते हैं। इस अवधि में सीता और लक्ष्मण केवल राम के साहचर्य मात्र से संतुष्ट नहीं होते, बल्कि वनवास की सभी प्रमुख घटनाओं में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लक्ष्मण कुशल वास्तुशिल्पी होने के कारण चित्रकूट और पंचवटी में सुंदर पर्णशाला बनाते हैं। इस के अलावा प्रतिदिन वे सीता और राम के लिए फल और जल लाया करते थे और रात भर जागकर उनकी सुरक्षा का ध्यान रखते थे। सीता राम के मन को प्रसन्न रखने के लिए आवश्यक वातावरण बनाती थीं और समय-समय पर समयोचित परामर्श भी दिया करती थीं। राम दोनों की सेवाओं से संतुष्ट होकर उनकी सेवा-भावना की प्रशंसा किया करते थे।

राम की भाँति लक्ष्मण भी हास्यप्रिय थे। शूर्पणखा के साथ परिहास करने में लक्ष्मण ने भी सक्रिय भाग लिया। किंतु यह परिहास तीनों के लिए बहुत महंगा पड़ा। जब राम चौदह हजार राक्षसों के साथ अकेले लड़ रहे थे तो उस समय राम के आदेश पर लक्ष्मण ने सीता की सुरक्षा का संपूर्ण दायित्व बड़ी निष्ठा और सतर्कता के साथ निभाया।

लक्ष्मण की बुद्धि कुशाग्र होती है! उन्होंने राम को सतर्क करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा कि इस संसार में स्वर्ण मृग नहीं हो सकता और यह वास्तव में मारीच है जो इस रूप में आकर हमें धोखा दे रहा है। लक्ष्मण को सीता के यहाँ से दूर करने के लिए मारीच ने जब राम के स्वर का अनुकरण करते हुए आर्तनाद किया तब भी लक्ष्मण ने इस धूर्तता को पहचान लिया। किंतु लक्ष्मण की बात न राम ने सुनी और न सीता ने क्योंकि दोनों पर नियति का सम्मोहन छाया हुआ था। लक्ष्मण का सबसे बड़ा गुण था—आर्जव, सीधा सादा स्वभाव, निर्भीकता ओर अंत:करण की शुद्धता हालांकि वे कभी-कभी उद्विग्न हुआ करते थे। किंतु उन्होंने कभी भी इस बात का दुराग्रह नहीं किया था कि उन्हीं की बात अंतिम मानी जाए। दूसरों की बात ध्यान से सुनने को वे हमेशा तैयार रहते थे। जब सीता ने लक्ष्मण को राम के पास जाने के लिए लगभग बाध्य किया तो लक्ष्मण ने अनिच्छुक होते हुए भी भविष्य को नियति पर छोड़कर उनकी आज्ञा का पालन किया। पिताजी के अनिर्दिष्ट आदेश पर राम का वनवास स्वीकार करना लक्ष्मण को बिलकुल पसंद नहीं था। परंतु जब राम ने अपने विवेक से निर्णय कर लिया तो लक्ष्मण उनके निर्णय को सही मानकर वनवास में उनके साथ रहे। जब भरत बड़ी भारी सेना लेकर चित्रकूट पहुँच रहे थे तो उनके सदाशय पर लक्ष्मण को शंका अवश्य हुई थी, परंतु जब राम ने उनसे कहा कि भरत वैसे नहीं हो सकते जैसे वे सोच रहे हैं तो तुरंत लक्ष्मण शांत होकर पेड़ से उतर आते हैं। जब कभी लक्ष्मण का मन विक्षुब्ध होता है तो उसका कारण राम के प्रति उनकी अनन्य भावना ही है। वास्तव में रामायण के समूचे इतिवृत्त में राम के सबसे निकट और निरंतर साथ देनेवाला पात्र केवल लक्ष्मण है जो जन्म से लेकर अंतिम समय तक राम के साथ ही रहे। इसीलिए वाल्मीकि लक्ष्मण को 'लक्ष्मिवर्द्धन' का उपनाम देते हैं। राम की सश्रीकता का संवर्द्धन उनके समर्पित जीवन-दर्शन का सार है।

रावण द्वारा सीता का अपहरण होने के पश्चात, राम को सांत्वना देकर उनको शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आत्मिक धैर्य और स्थैर्य देनेवाला एकमात्र व्यक्ति लक्ष्मण ही थे। जब राम शोकाकुल होकर रोषावेश में निरपराध पर्वतो, निरीह नदियों और अनिंद्य वनस्पति को नष्ट करने को उद्यत हो जाते हैं क्योंकि इनमें से किसी ने बार-बार पूछने पर भी सीता का पता नहीं बताया तो लक्ष्मण ही उनको सांत्वना देकर आश्वस्त कर देते हैं कि सीता का पता अवश्य चलेगा ओर किसी एक व्यक्ति के अपराध के कारण समस्त सृष्टि को अस्त-व्यस्त कर देना समीचीन नहीं है। इसीलिए राम लक्ष्मण को अपना 'प्रधान मित्र' मानकर उनका सम्मान करते हैं। असल में राम के हृदय में सीता के वियोग के कारण जो रिक्तता आ जाती है, उसे लक्ष्मण ही भरने का प्रयास करते हैं। इस रिक्तता को वास्तव में अधिक सार्थकता के साथ हनुमान का समागम भर देता है और इससे लक्ष्मण भी कुछ राहत का अनुभव करते हैं। यद्यपि राम की अयनिका में मित्र की मर्यादा सुग्रीव निभाते हैं, फिर भी वास्तविक कार्यसाधक बनकर राम कार्य का निर्वहण हनुमान ही करते है।

इस प्रकार राम के अयन (रामायण) का तीसरा चरण किष्किंधा से आरंभ होता है और इस चरण में राम के साथ लक्ष्मण और हनुमान सहभागिता कर 'त्रितय' को संपन्न करते हैं। पंपा सरोवर दंडक ओर किष्किंधा के बीच संधायक की भूमिका निभाता है। पंपा की पावन धारा को देखकर राम को अपनी मधुर भाषिणी मैथिली की कल्याणकारिणी वाणी का बार-बार स्मरण हो आता है। अत्यंत भावुक और संवेदनशील स्वर में राम लक्ष्मण को कहते हैं कि पंपा की प्रत्येक लहरी और उसके तट पर चमकनेवाला हर कंकड़ सीता की याद दिलाती हैं जिनका मृदु-मधुर उच्चारण उनकी स्मृति को चिर नवीन बना देती है। पंपा को पार करने के बाद दोनों राजकुमार भिक्षु रूप में उनकी और आनेवाले हनुमान को देखते हैं। दोनों हाथ जोड़कर खोजती हुई आंखों के साथ पहले दे अपना परिचय देते हैं और फिर अपने स्वामी सुग्रीव की राज्यच्युति का उल्लेख करते हैं। जब हनुमान राम और लक्ष्मण को मनुष्य के आकार में विद्यमान देवता मानकर उनकी मुखमुद्रा से प्रसारित सुगंध की प्रशंसा करते हैं तो राम भी हनुमान की विनय, विवेक, शालीनता और संस्कार संपन्न सात्विक अभिव्यंजना आदि विशिष्ट गुणों की मुक्त कंठ से सराहना करते हैं। हृदय, मस्तिष्क और आत्मा को आलोकित करनेवाली उनकी वाणी सुनकर राम सुग्रीव के भाग्य की सराहना करते हैं जिनको इतना योग्य व्यक्ति 'वित्त सचिव' (हनुमान अपना परिचय देते समय अपने लिए इसी पदनाम का प्रयोग करते हैं) के रूप में मिला है। 'रामायण' में हनुमान का पहला दर्शन यही है और प्रथम दर्शन में ही राम उनके मुखमंडल पर विस्फरित उज्ज्वल शोभा और उनके मुँह से प्रकट होनेवाली प्रसन्न और प्रबोधिनी वाणी की प्रशंसा करते हैं।

मन ही मन हनुमान के बारे में इतनी प्रशस्त धारणा रखते हुएं भी, राम उनसे काफी समय तक सीधे बात नहीं करते। प्रथम दर्शन की प्रशंसा भी लक्ष्मण को संबोधित थी और लक्ष्मण से ही हनुमान को प्रतिभाषित करवाते हैं। यह संवाद दोनों ओर से समान रूप से संतुलित और परिनिष्ठित चलता है जिसके फलस्वरूप ऋष्यमूक पर्वत पर राम और सुग्रीव का संकल्पित समागम होता है। ऋषियों की मौन साधना का केंद्र ही ऋष्यमूक है। दोनों राजकुमारों को ऋष्यमूक तक अपने कंधों पर बिठाकर ले जाने का हनुमान का प्रस्ताव जब राम द्वारा स्वीकृत होता है तो हनुमान अपने को धन्य समझते हैं। इससे सेवा संवाद का पूर्वरंग बनाती हैं। अंतत: राम की दिव्य वर्चस्विता के निकट सुग्रीव को लाने में हनुमान सफलता प्राप्त करते हैं। उसके बाद वे एकांत में लक्ष्मण से बातें करते हैं और आगे की घटनाओं का मूक साक्षी बन जाते हैं। जब सुग्रीव अपनी मैत्री के प्रतीक के रूप में राम के सामने अपनी बाहु प्रसारित करते हैं तो राम न केवल उस प्रसारित बाहु का प्रेम से अपनी बाहु के प्रसारण से स्वागत करते हैं, बल्कि सुग्रीव को गले लगा लेते हैं और उनको पारस्परिक सद्भावना और सहयोग का आश्वासन देते हैं। हनुमान दोनों की मैत्री को अग्नि देवता के सान्निध्य में एक औपचारिक अनुष्ठान का रूप देकर उसे पवित्र बना देते हैं।

यह पवित्र अनुष्ठान ऋष्यमूक से थोड़ी दूर मलय पर्वत पर संपन्न होता है। अब सारा संवाद सीधे राम और सुग्रीव के बीच होता है। हनुमान उस में तभी शामिल होते हैं, जब उनको बीच में बुलाया जाता है। अन्यथा वे केवल उत्प्रेरक अभिकर्ता की भूमिका निभाते हुए यथा समय अपनी सम्मति, संयोजन और सान्त्वना के माध्यम से उनकी सेवा करते हैं। राम की परोक्ष सहायता के बल पर जब सुग्रीव अपने भाई से युद्ध करने चलते हैं तब भी हनुमान तटस्थ द्रष्टा के रूप में राम और सुग्रीव के साथ चलते हैं। दोनों बार युद्ध के समय वे उपस्थित थे, पर उपस्थित इसलिए थे क्योंकि उनको भी उपस्थित रहना था।

हनुमान तभी अपना मुँह खोलकर कुछ बोलते हैं जब तारा अपने पति के साथ परलोक जाने की बात कहती हैं। वें कई प्रकार से उनको समझाते हैं कि काल के निर्णय का कोई प्रतिरोध नहीं कर सकता और इसलिए उनको इस बात से आश्वस्त रहना चाहिए कि उनका पुत्र अपने पिता का उत्तराधिकारी बनकर पति वियोग की प्रतिपूर्ति करेगा। फिर भी तारा इससे संतुष्ट नहीं हो पाती। उनको तभी सांत्वना मिलती है जब राम स्वयं उनको आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि बदली हुई व्यवस्था में भी उनको पहले की तरह पूरी सुख-सुविधा उत्पन्न होगी। यह बात राम बड़ी सांकेतिक भाषा में कहते हैं और हनुमान की सुग्राही उपज्ञा उसे तत्काल समझ लेती है। राम द्वारा अनुष्ठित वालि-वध अथवा तारा की यथास्थिति के संबंध में उनके दिए गए आश्वासन पर हनुमान अपनी ओर से कोई टिप्पणी नहीं देते। किंतु धर्म के मूर्त रूप राम के इस निर्णय को वे भगवत्-संकल्प का न्यायोचित समाधान मान लेते हैं। इससे हनुमान को एक लाभ होता है। अत्यंत जटिल समस्याओं का समाधान करने के लिए राम किस प्रकार अपनी क्रिया और प्रतिक्रिया के प्रति सजग और सावधान रहते हैं, इस बात को धीरे-धीरे समझने का उनको अवसर मिलता है।

हनुमान का दृष्टिकोण हमेशा पूर्वाग्रह से मुक्त होता है और उनकी वाणी में शब्दों का संतुलित प्रयोग देखने को मिलता है। वाली का दाह-संस्कार हो जाने के बाद सुग्रीव अपने वानर प्रमुखों के साथ राम के आदेश की प्रतीक्षा में खड़े रहते हैं। किसी को कुछ कहने का साहस नहीं होता। केवल हनुमान राम के पास जाकर उनसे अनुरोध करते हैं कि वे कृपया किष्किंधा पधार कर इस महान् राज्य के सिंहासन पर उपयुक्त व्यक्ति को प्रतिष्ठित कर राज्य को पुनर्वासित करें। ध्यान देने की बात है कि वे सुग्रीव का नाम न लेकर केवल राज्य में स्वामित्व की जो रिक्ति बन गई हैं, उस की पूर्ति करने का अनुरोध करते हैं। इस प्रसंग में उन्होंने बहुत ही उपयुक्त शब्द—'स्वामि संबंध' का प्रयोग किया है। निर्णय वे राम के ऊपर छोड़ देते हैं जो कि सर्वथा उपयुक्त है। अब राम पहली बार हनुमान से बात करते हुए उनके पहले प्रस्ताव का उत्तर पहले देते हैं अर्थात् किष्किंधा में राम के प्रवेश से संबंधित। राम हनुमान से बड़ी शिष्ट भाषा में कहते हैं कि वे किसी गांव या शहर में प्रवेश नहीं कर सकते क्योंकि उनके पिता जी

ने उनको चौदह वर्ष तक वनवास की दीक्षा दी है। हनुमान से इतना कहकर राम सुग्रीव की तरफ मुड़कर उनसे कहते हैं कि आप किष्किंधा के राज्य सिंहासन पर आसीन होकर अपने अग्रज के ज्येष्ठ पुत्र अंगद को—जो कि सामर्थ्य, विवेक ओर चरित्र में उन्हीं के समान हैं—युवराज के पद पर प्रतिष्ठित करें। इससे वहाँ पर उपस्थित सभी नागरिकों और राज्य प्रमुखों का मन प्रसन्न हो जाता है और हनुमान भी नर-देवता राम के न्याय संगत और संतुलित निर्णय को सर्वथा उचित समझकर सब कुछ सुसंपन्न अनुभव करते हैं।

आवश्यकता पड़ने पर सुग्रीव को सतर्क करने में हनुमान कभी संकोच नहीं करते। शरद् के आगमन के बाद भी सुग्रीव का ध्यान इस बात पर नहीं जाता है कि अब सीता के अन्वेषण का समय आ चुका है जैसा कि राम को वचन दिया गया था। हनुमान समय रहते सुग्रीव को इस बात का स्मरण कराते हैं और साथ-साथ इस बात को सुनिश्चित भी कराते हैं कि अन्वेषण का कार्य सही समय पर सही ढंग से आरंभ करने के लिए विभिन्न प्रांतों से वानर सेना को बुलाने का दायित्व नील को सौंपा जाए। यदि हनुमान समय पर सुग्रीव को इस बात की याद नहीं दिलाते तो सुग्रीव निश्चय ही अपनी गहरी नींद से नहीं जगते और लक्ष्मण को वे उस समय मुँह दिखाने लायक नहीं होते जब उन्होंने सुग्रीव पर कर्त्तव्य की घोर उपेक्षा का दोष आरोपित किया। इस प्रकार हनुमान का समय पर उठाया गया कदम उनके राजनीतिक विवेक का परिचय कराता है जिसने उनके स्वामी सुग्रीव की प्रतिष्ठा की रक्षा भी की।

सही समय पर सावधान किए जाने पर भी सुग्रीव ने इस बात की गंभीरता पर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया। जब अंगद आकर बताते हैं कि लक्ष्मण रोषपूरित नेत्रों से और उग्र मनोवृत्ति से आ रहे हैं तब सुग्रीव उदग्र ओर विक्षिप्तनयनों से इधर-उधर देखकर दूसरों को इस असावधनी का दोष देने का प्रयास करते हैं और कहते हैं कि किसी ने ईर्ष्यावश राम से कुछ मिथ्यारोपण किया है। इस विकट परिस्थिति में हनुमान अपनी पिछली बात को फिर से एक-बार दुहराते हुए निवेदन करते हैं कि उनके स्वामी सुग्रीव ने समय का बिल्कुल ध्यान नहीं रखा है और इसी कारण लक्ष्मण को इस प्रकार आना पड़ा। अब की बार वे कुछ कटु भाषा का प्रयोग करते हैं ताकि सुग्रीव को विषय की गंभीरता समझ में आ जाएँ। सुग्रीव को वे स्पष्ट शब्दों में कह देते हैं कि उनसे जो अक्षम्य अपराध हुआ है, उसके लिए लक्ष्मण से क्षमा मांगना उनका सत्वर कर्तव्य है। वे सुग्रीव को सतर्क करते हुए कहते हैं कि यदि सही कदम उठाने में और विलंब हुआ तो परिणाम अत्यंत भयानक हो सकता है। विशेष ध्यान देने की बात है कि यहाँ पर अपने वचन और समयबद्धता पर बल देते हुए हनुमान जिस पदावली का प्रयोग करते हैं (राजन् तिष्ट स्वसमये) लगभग इसी प्रकार का वाक्य-विन्यास राम का भी है (समये तिष्ठ सुग्रीव)। इससे पता चलता है कि हनुमान की वाग्-भंगिमा राम के कितनी निकट और कितनी मिलती जुलती है। यह भी स्पष्ट होता है कि जब राज्य की प्रतिष्ठा पर

कलंक की छाया दिखाई देती है तब हनुमान कितने निर्भीक और कर्त्तव्य के प्रति सजग होकर अपने स्वामी को सजग बना सकते हैं। प्रासंगिक रूप से हनुमान चाहते हैं कि सुग्रीव इस बात को ठीक-ठीक समझ लें कि उनके साथ मैत्री अपनाने में राम ने जिस उदारता और महनीयता का परिचय दिया है, उसको न ग़लत समझना चाहिए और न उसका दुरूपयोग करना चाहिए। तब भी सुग्रीव लक्ष्मण की उग्रता को शांत करने के लिए तारा को भेजते हैं। अंततः भारी संकट सात्विक समझौता बनकर समाप्त हो जाता है—तारा की अनुनय-विनय ओर करुणामय राम की उदारता के कारण। किंतु यह सारा कार्यकलाप हनुमान को एक महान् चिंतक कुशल राजकर्ता और निर्भय संवादक के रूप में प्रस्तुत करता है।

राम इस बात को सुदूर दर्शी नयनों से देखते हैं और सुग्रीव में इस विवेक का उदय कुछ विलंब से होता है। जब सभी वानर-वीर सीता की खोज में विभिन्न दिशाओं में भेजे जाते हैं तब राम और सुग्रीव दोनों को आसानी से इस बात का विश्वास होता है कि हनुमान ही इस कार्य को संपन्न करने में समर्थ हैं।

इस प्रसंग का सारा सर्ग हनुमान की गुणावली के वर्णन से भरा पड़ा है। इस गुणगान का आरंभ सुग्रीव ही करते हैं। हो सकता है, अब तक उनका विवेक-वर्द्धन हो चुका है। वे प्रशंसात्मक परिभाषा में कहते हैं कि गति, वेग, तेजस्विता ओर लाघव सभी दृष्टियों से मारुति की समता इस सांर में और कोई नहीं कर सकता। धरती पर, वायुमंडल मे, आकाश में, स्वर्ग में और रसातल में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां पर उनकी पहुँच नहीं हो सकती। ये गुण और यह सामर्थ्य उनको उनके पिता से मिला है जो कि विश्वव्यापी हैं। वे इस बात को प्रमाणित करते हैं कि बल, बुद्धि, पराक्रम, देश ओर काल के साथ अनुकूलता की प्रवृत्ति, नयज्ञता आदि सभी सद्गुणों का उनमें सुंदर समाहार है, इसलिए इस महान् कार्य को सफलतापूर्वक संपन्न करने की उनमें क्षमता है।

सुग्रीव की बात ध्यान से सुनने के बाद राम को विश्वास होता है कि हनुमान सचमुच इस दुष्कर कार्य को सुसंपन्न करने के लिए सर्वथा योग्य है क्योंकि सुग्रीव को उन पर जितना विश्वास है, कहीं उससे भी अधिक हनुमान को अपने ऊपर है। तब जाकर वे अपने नाम से बनी हुई मुद्रिका हनुमान को देकर कहते हैं कि इस मुद्रिका को देखकर सीता को तुम पर विश्वास होगा। यह दूसरा प्रसंग है जब राम हनुमान से सीधे बात करते दिखाई देते हैं। अब की बार वे उन पर आशीर्वाद की अजस्रधारा बरसाते हुए कहते हैं कि तुम्हारी व्यवसायात्मिका बुद्धि, सुरक्षित और सुपरीक्षित सामर्थ्य और सुग्रीव की सुप्रसन्न आशंसा—से सब बातें बताती हैं कि तुम्हारी कार्य सिद्धि मे कोई संदेह नहीं है। अंत में राम कहते हैं, "मुझे तुम्हारा और तुम्हारे बल-पराक्रम का पूरा भरोसा है, मुझे तुम्हारा ही सहारा है। आगे बढ़ो, जनक नंदिनी का पता लगाने के लिए जो कुछ करना हो, निर्भय होकर करो, मैं तुम्हारी राह देखता रहूँगा।" राम

के ये शब्द और उनकी दी हुई बहुमूल्य मुद्रिका हनुमान को आनंद से आत्मविभोर बनाते हैं। हनुमान मुद्रिका को शिरोधार्य बनाकर राम के चरणों की वंदना करते हैं और हाथ जोड़कर उनको नमस्कार कर अपने अभियान का आरंभ करते हैं।

इसी बिंदु से सीता के अन्वेषण में हनुमान के अभियान का आरंभ होता है। यह उनके सामने सबसे बड़ी चुनौती थी और उसे वे साहस और विश्वास के साथ स्वीकार करते हैं। राम के अमोघ आशीर्वाद ही उनको प्रमुख बल प्रदान करते हैं। पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में प्रेषित वानर-प्रमुख एक मास की अवधि तक सीता का अन्वेषण कर उस दिशा में कहीं भी उनको न पाकर किष्किंधा लौट आते हैं और सुग्रीव को सूचित करते हैं। अंगद के नेतृत्व तथा वयोवृद्ध जाबवान् के पर्यवेक्षण में दक्षिण की ओर चल पड़ी वानर सेना के साथ हनुमान को भी सारी दिशा में कहीं भी जानकी का पता नहीं चलता। पर एक मास की अवधि बीत चुकी है। रास्ते में उनको उज्ज्वल आध्यात्मिक तेज से विराजमान एक तपस्विनी ध्यान मुद्रा में एक एकांत गुफा में बैठी हुई दिखाई देती है। बाहर अंधकार ही अंधकार, पर भीतर प्रकाश पुंज उस गुफा की विशेषता है। हनुमान उनसे बात करते हैं। पता चलता है कि उनका नाम स्वयंप्रभा है। स्वयंप्रभा के यहाँ फलोपहार ग्रहण कर उन्हीं के तपोबल पर सभी वानर गुफा से बाहर निकल पाते हैं। अब वे अपने को एकदम समुद्र के सामने पाते हैं। एक ओर विन्ध्याचल है और दूसरी ओर प्रस्रवण पर्वत।

यहाँ पर हनुमान के सामने एक और समस्या-एकदम आंतरिक समस्या-खड़ी हो जाती है। अंगद को सुग्रीव के पास जाकर अपनी विफलता की सूचना देना अच्छा नहीं लगता है और कुछ भय भी लगता है। इसलिए वह कुछ वानर-वीरों का सहयोग लेकर वहीं पर एक और राज्य की स्थापना करने की बात सोचता है। वह आमरण अनशन (प्रायोपवेश) की घोषणा कर देता है और उसके लिए सबका समर्थन प्राप्त करने का प्रयास करता है। हनुमान इसका विरोध करते हैं क्योंकि उनको आशंका है कि सुग्रीव के विरुद्ध एक विद्रोह खड़ा करने के लिए अंगद यह षड्यंत्र बना रहा है। वे अंगद को स्पष्ट बता देते हैं कि सुग्रीव तथा दोनों राजकुमारों से अपने को और जांबवान एवं नील जैसे प्रमुख वानर-वीरों को अलग करने का उनका प्रयास बुरी तरह से विफल हो जाएगा और यदि वह ठीक रास्ते पर नहीं चलेगा तो वह राम, लक्ष्मण, और सुग्रीव के क्रोध से बच नहीं पाएगा। इस विवेकपूर्ण परामर्श के बावजूद अंगद प्रायोपवेश का अनुष्ठान आरंभ कर देता है।

इतने में अचानक संपाति नाम का गृध्रराज जो कि जटायु का बड़ा भाई है, वानरों को दिखाई देता है। पर्वत के ऊपर बैठे हुए संपाति नीचे कई वानरों को देखकर सबको एक-एक करके कई दिन तक अपना आहार बना लेने की एक लंबी योजना बनाते है और इधर अंगद के नेतृत्व में आयोजित प्रायोपवेश संपाति को देखते ही समाप्त हो जाता है। सभी वानर संपाति के पास जाकर अपनी राम कहानी और अपने राम की

कहानी सुनाने लगते हैं और इसकी प्रतिक्रिया में संपाति जो अपने बारे में जो रोचक और प्रासंगिक बातें कहते हैं, उनको भी ध्यान से सुनने लगते हैं। संपाति स्वभाव से दूर-दूर के दृश्यों को देखने की क्षमता रखते हैं। इसी शक्ति के सहारे, एक हज़ार योजन दूर लंका में एकांत स्थान पर बैठी सीता को वह देख पाते हैं। संपति से यह बात सुनकर वानर सेना को प्रसन्नता होती है और उनको सीता की खोज में आगे बढ़ने में सहारा मिलता है। इस प्रकार संपाति के आकस्मिक प्रवेश से अंगद द्वारा खड़ी की गई मध्यावधि समस्या का अपने आप समाधान निकल आता है और हनुमान एकदम राहत की साँस लेकर सोचते हैं कि कृत्रिम संकट का सुखद समापन हो चुका है।

वानर-दल के सामने अगली समस्या यह थी कि सागर को कैसे पार किया जाए ताकि वे लंका में पहुँचकर सीता के दर्शन कर सकें। यह काम किससे होगा और कैसे होगा, अब प्रश्न यही है। यहाँ भी अंगद हनुमान को इस समस्या के समाधान से अलग रखने का प्रयास करता है, यह भली भांति जानते हुए भी कि यह महान् कार्य संभालने के लिए आवश्यक शक्ति और उत्प्रेरणा उन्हीं के पास है क्योंकि उनको इसके लिए आवश्यक नैतिक मनोबल राम के आशीर्वाद और सुग्रीव की मंगलकामना से प्राप्त हो चुका है। यह सब जानते हुए भी अंगद एक हास्यास्पद मानसिक व्यायाम का दृश्य खड़ा कर देता है। वह बारी बारी से सभी वानर-वीरों से पूछता है कि कौन कितनी दूर सागर का रास्ता तय कर सकता है। जो बोली सामने आती है, वह दस से नब्बे योजन तक जाती है। गज की बोली सबसे कम है और जांबवान की सबसे ज्यादा। अपनी ओर से अंगद स्वयं अपनी क्षमता बनाते हुए कहते है कि मैं सागर को पार तो कर सकता हूँ, किंतु लौट आने में संदेह है। इस पर वयोवृद्ध और वरिष्ठ नेता जाबवान् बड़ी समझदारी के साथ एक विवेकशील विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं, कि अंगद, तुम तो हमारे नायक हो। हो सकता है, तुम सागर पार कर फिर वापस आ भी सकते हो। लेकिन इस प्रकार के साहसपूर्ण कार्यों को स्वयं अपने हाथ में लेना एक नायक के लायक कदम नहीं है। औचित्य इस बात में हैं कि योग्य व्यक्ति को ऐसा काम सौंपना चाहिए। इससे अंगद मौन हो जाता है। पर वास्तविक कार्यकुशल व्यक्ति के पास जाकर उनके मौन को पराक्रम में परिवर्तित करने का दायित्व जांबवान् अपने आप अपने ऊपर लेते हैं। यह कार्यसाधक व्यक्ति—हनुमान आराम से एकांत मैं बैठकर कुछ सोच रहे हैं। शायद यही सोच रहे होंगे कि अब क्या करना है, स्वामी सुग्रीव और लोक स्वामी राम ने उनको जो काम सौंपा है, उसको उन्हीं की दी हुई शक्ति का उपयोग करते हुए कैसे सफलतापूर्वक संपन्न करना है।

जांबवान हनुमान को उद्‌बोधित करते हुए कहते हैं कि यह कार्य तुम्हीं को करना है, दूसरा कोई इस योग्य नहीं है। इस पर हनुमान आंतरिक प्रेरणा और बाहरी प्रोत्साहन से आत्मबल को समेटकर इस दुष्कर कार्य को आरंभ करते हैं—मौन उपक्रम से, न कि केवल शब्दों से। वे अपने शरीर को विशालकाय बनाते जाते हैं और अपने आंतरिक

आनंद को प्रकट करने के लिए पूंछ हिलाते रहते हैं। कुछ ही समय में वे तीनों लोकों को अपने तीन पैरों से घेरनेवाले त्रिविक्रम का जैसा रूप धारण कर वानर-वीरों के सम्मुख खड़े हो जाते हैं। फिर अपनी निजी सामर्थ्य और संपन्द्यमान कार्य की गरिमा का अनुमान लगाकर वे अपने को आश्वस्त कर लेते हैं कि उनको जो काम सौंपा गया है, उसे वे सुगमता से संपन्न कर सकेंगे। अंतत: वे अपने साथियों से कुछ समय के लिए विदा होकर अपनी उड़ान का उपक्रम करने के लिए महेन्द्र पर्वत की ओर बढ़ते हैं। महावीर हनुमान को इस महान् कार्य में सफलता और सकुशल प्रत्यागमन की मंगल कामना के साथ विदा करते हुए सभी वानर-वीर मुक्त और संयुक्त कंठ से जय-जयकार करते हैं। उनको इस बात का आश्वासन दिलाते हैं कि उनको अपना नैतिक समर्थन देने के लिए वे सब के सब तब तक एक ही पैर पर खड़े रहेंगे जब तक वे सकुशल लौट न आएं।

जिस क्षण हनुमान, महेन्द्र पर्वत से उड़ान भर कर निकल पड़ते हैं तब से उनके प्रत्यागमन तक का सारा इतिवृत्त जो कि पूरे एक रात और एक दिन तक चलता है हनुमान को केंद्र बनाकर घटित होता है। उधर लंकावासियों का और इधर महेन्द्र पर्वत पर इस साहस-कृत्य के परिणाम की खड़े-खड़े उत्कंठित प्रतीक्षा करनेवाले समस्त वानर समूह का ध्यान आकृष्ट करनेवाले इस अनुष्ठान का कर्त्ता हनुमान है और अभीप्सित कर्म जानकी। धनुर्विद्या में धुरंधर राम के प्रखर शर की भाँति निर्यात मारूतनंदन सकुशल सागर को पार करते हैं—अंतरिक्ष के उज्ज्वल नक्षत्र की तरह निर्विराम और निरुद्विग्न। सागर को पार करने के मार्ग में मैनाक नाम का पर्वत हनुमान से अपने यहाँ विश्राम करने और आतिथ्य स्वीकार करने का अनुरोध करता है। किंतु हनुमान केवल अपने कर स्पर्श से आभार प्रकट कर आगे बढ़ते ही चले जाते हैं—क्षण भर भी नहीं रुकते। थोड़ी देर के बाद नागमाता सुरसा अपना विकराल मुँह खोलकर हनुमान को अपना आहार बनाना चाहती है। असल में हनुमान की बुद्धि और सामर्थ्य की परीक्षा करने के लिए देवता लोग सुरसा को भेजते हैं। हनुमान बड़ी चतुराई के साथ सुरसा के मुँह में क्षण-भर के लिए प्रवेश कर उसी क्षण बाहर निकल आते हैं। नागमाता केवल हनुमान को निगलना चाहती थी और हनुमान उसके मुँह में प्रवेश तो कर लेते हैं, पर बिना उसके प्राण लिए और न अपने प्राण दिए देखते ही देखते अपने को बचाकर आगे बढ़ते हैं। इसी प्रकार के एक और संकट का उनको सामना करना पड़ता है जब सिंहिका नाम की छायाग्राही राक्षसी उनको नीचे अपनी ओर बलात् खींच लेती है। हनुमान उसका संहार कर देते हैं। अंतत: संध्याकाल में सूर्यास्त से पहले ही वे लंका में उतरते हैं। इस साहसपूर्ण उपलब्धि को देखकर अगोचर देवता और गोचर प्राणी चकित हो जाते हैं। लंका में प्रवेश करने से उनको लंका की रखवाली करनेवाली राक्षसी रोकती है और उनको आघात पहुँचाने का भी प्रयास करती है। परंतु हनुमान उस को हल्की मुट्ठी से ही हताहत कर देते हैं। इस पर लंकेश्वरी भविष्यवाणी करती है कि अब लंका के सर्वनाश होने का समय आ चुका है।

रात होते ही हनुमान लंका में प्रवेश करते हैं। कुछ ही देर में पूर्णिमा का चांद अपनी छिटकती हुई चांदनी के साथ उदित होकर हनुमान के मार्ग को अलौकिक और आह्लादकारी बना देता है। अब से लंका में बीतनेवाला उनका प्रत्येक क्षण सार्थक और सतर्कतापेक्षी होता है क्योंकि उनको स्वयं किसी से बिना देखे गए, जानकी को देखना है। और लंका में सर्वत्र सुशिक्षित रक्षक सावधानी से पहरा दे रहे है। वे अपने आकार को बिल्ली (वृपदशक) के आकार का बनाकर सारी लंका का पहले संक्षिप्त सर्वेक्षण करते हैं। स्वप समय में ही वे रावण के अंत: पुर तक पहुँच जाते हैं। वहाँ पर रावण को और रावण से थोड़ी दूर पर अकेली सो रही मंदोदरी को देखते हैं। मंदोदरी को देखते ही वे उनको सीता समझकर नाच उठते हैं, पर कुछ ही देर में अपनी गलती समझ जाते हैं। अपनी कल्पना की परमांगाना की खोज में आगे बढ़ते हैं। सारी लंका खोजने पर भी जानकी कहीं दिखाई नहीं दी, इस बात का उनको काफी दु:ख होता है। जानकी को देखने के बजाए अंत:पुर की असुरांगनाओं को अश्लील अंग-भंगिमाओं में देखने का मन में परिताप होता है। परंतु फिर अपने को समझा लेते हैं कि स्त्री को स्त्रियों में ही खोजा जा सकता है, इसलिए इसमें उनका दोष नहीं है। इस प्रकार सारी रात बीतती चली जाती है और पौ फटने से पहले अशोक वन में पहुंच जाते हैं। अचानक उनको एक पेड़ की छाया में सीता जैसी साध्वी स्त्री दिखाई देती है। उनकी चारों ओर उनकी रखवाली करने वाली राक्षसियां दिखाई देती हैं जिनको रावण ने इसलिए तैनात किया था। जानकी को देखकर उनको प्रसन्नता होती है, परंतु उनके विषाद को देखकर दु:ख होता है। फिर भी अंतत: अपने अन्वेषण की लक्ष्य सिद्धि पर वे अपने आपको धन्य और कृतार्थ मानते हैं। समस्त नारी जगत् में असमान और आदर्श परम सुंदरी की मुखाकृति जगमोहन राम की आकृति से मिलती जुलती दिखाई देती है। जिस परमांगना को देखने के बाद संसार में और कुछ देखने की आवश्यकता नहीं रह जाती है, ऐसी वर वर्णिनी को प्रत्यक्ष पाकर अपने को भाग्यशाली मानते हैं। उनका मन तत्काल राम के पास चला जाता है। वे इस बात को बिल्कुल न्यायसम्मत समझते हैं कि इस अपूर्व सुंदरी के लिए उन्हें इतना बड़ा युद्ध सन्नद्ध करना पड़ा।

हनुमान के लिए परीक्षा का वास्तविक समय अभी आरंभ होता है। जानकी के दर्शन मात्र से उनका काम पूरा नहीं हो पाता। उनको रामदूत के रूप में अपना परिचय देकर विश्वास दिलाना है, फिर उनको राम नाम से अंकित मुद्रिका भी देनी है, उनके सुख-दु:ख का सारा समाचार उनसे अवगत कर लेना है और राम के पास जाकर उनको यह सारा वृत्तांत सुनाना है। अब तक वे लुक-छिपकर अपना काम चला रहे हैं। अब उनको अपने निजी रूप में प्रकट कर लेना है और साहस के साथ इस प्रयास के परिणामं का सामना करना है और इस साहसपूर्ण प्रयास का परिमाण अंतत: निजी पक्ष को लाभ और लक्ष्य सिद्धि होनी चाहिए और आततायी शत्रुपक्ष के लिए हानिकार होना चाहिए। यह सारा चिंतन हनुमान अपने मन ही मन कर रहे होंगे और साथ ही पति परायण जानकी की दयनीय स्थिति को देखकर व्याकुलता का भी अनुभव कर रहे होंगे।

अचानक रावण अशोकवन में प्रवेश करता है। हो सकता है, प्रतिदिन प्रभात काल में वह इसी प्रकार एक चक्कर यहाँ के लिए लगा रहा होगा, यह देखने के लिए कि उनके द्वारा नियुक्त असुरांगनाएँ कहाँ तक सीता के मन को लंकेश्वर की ओर मोड़ने में सफल हो रही हैं। इससे हनुमान को रावण और सीता की मनस्थिति को भी निकटता से देखने-परखने में सहायता मिलती है। जब रावण निराश होकर वहाँ से लौट जाता है, उसके पश्चात् हनुमान राम का गुणगान करते हुए उनकी वर्तमान परिस्थिति का स्वांत: सुखाय वर्णन करने लगते हैं—पेड़ पर ही बैठकर। जब हनुमान इस कथा-कथन के माध्यम से रामदूत के रूप में अपना परिचय देते हैं तो सीता की दृष्टि इस वाक्-स्रष्टा की ओर ऊपर उठती है। मधुर शब्दों में मधुरतर-वार्ता सुनाते हुए जब वानर रूप में रामदूत नीचे उतर आते हैं तो रामाक्षी राम किंकर को देखकर प्रसन्न होती है और दोनों के बीच संवाद आरंभ होता है। प्रारंभिक शंका और संशय का निवारण होने के पश्चात् दोनों के मन में एक दूसरे के ऊपर विश्वास और गौरव की भावना उत्पन्न होती है। परिणाम यह होता है कि हृदय हृदय से बात करने लगता है।

रामनाम से अंकित स्वामी राम की मुद्रिका देखते ही रामेक्षणी का हृदय रसार्द्र बन जाता है। राम से यथाशीघ्र मिलने के लिए सीता की उत्कंठा को देखकर हनुमान उनके सामने एक प्रस्ताव रखते हैं कि यदि वे चाहें तो इसी समय वे उनको अपने कंधे पर बिठाकर राम के पास पहुंचा सकते हैं। किंतु जब सीता राम की प्रतिष्ठा और गरिमा और अपनी मान-मर्यादा के आधार पर इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती हैं तब हनुमान को पूरा विश्वास होता है कि सीता जैसी उदारचेता नारी ही ऐसी बात कर सकती है। धीरे धीरे सीता की अनुकंपा और आत्मीयता का पात्र बनकर वे उनसे प्रत्यभिज्ञान के रूप में उनका एक बहुमूल्य आभरण चूड़ामणि प्राप्त कर लेते हैं ताकि राम को उसे देखकर यह विश्वास हो जाए कि हनुमान वास्तव में सीता को देख आए हैं।

इस घटना के बाद हनुमान बड़ी सुविधा से लंका से प्रस्थान कर सकते थे। असल में सीता का आशीर्वाद लेकर उनसे उन्होंने विदा ली थी। किंतु एक प्रतिष्ठित राजन यज्ञ और अनुभवी राजप्रमुख के रूप में जिस राज्य का उन्होंने पर्यटन किया था उसके अधिपति से संपर्क स्थापित किए बिना वे वापस जाना नहीं चाहते थे। इसके लिए वे एक सुंदर उद्यान को ध्वस्त करते हैं। इस पर जो राक्षस उन पर आक्रमण करते हैं, उनको मौत के शिकार बना देते हैं। इंद्रजित के ब्रह्मास्त्र के सामने तो वे जानबूझकर और बड़ी चतुराई से हार स्वीकार करते हैं ताकि वे रावण से मिल सकें। रावण के यहाँ जाकर वे अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट करते हैं और निर्भय होकर उससे कहते हैं कि मैं राम का दूत बनकर यहाँ आया हूं राम-पत्नी को देखने और तुमको यह बताने कि यदि तुमने तुरंत सीता जी को सकुशल राम को वापस नहीं किया तो जल्दी ही राम यहाँ पर आकर लंका पर विजय प्राप्त करेंगे और सीता को ले जाएँगे। इससे

रावण आग बबूला होकर हनुमान के वध की आज्ञा देता है। किंतु विभीषण बीच में आकर इस मृत्युदंड को कम कराकर यह आदेश दिलाते हैं कि हनुमान की पूंछ को तेल से भिगोकर जला दिया जाए। इससे हनुमान की योजना को अद्भुत बल मिलता है। वे सारी नगरी को भीषण ज्वालाओं से आतंकित कर देते हैं और कुछ ही क्षणों में समस्त लंका भस्म हो जाती है। सीता, राम और वायु देवता के आशीर्वाद की महिमा से इस भयानक अग्निकांड का हनुमान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, बल्कि उनको ऐसा लगता है कि उनकी जली हुई पूंछ पर किसी ने चंदन लगाया है। इसका एक आनुषंगिक लाभ यह होता है कि लंका में जितने प्रमुख सामारिक महत्व में स्थान हैं, वे सब इस अग्निकांड में नष्ट हो जाते हैं। इससे राम, सुग्रीव तथा वानर सेना का कार्य आगे चलकर सुगम बन जाता है। यह सब होने के बाद हनुमान अपनी पूंछ को सागर के जल से ठंडा कर लेते हैं और फिर एक बार सीता जी के दर्शन कर उनके आशीर्वाद लेकर महेन्द्र पर्वत लौट जाते हैं और अपने साथियों को सारा वृत्तांत सुनाते हैं और संक्षेप में यह सुखद समाचार सुनाते हैं कि सीता को देख आया हूँ।

आंजनेय के इस साहस-कृत्य का जो कि अपने आपमें कई दृष्टियों से विलक्षण है—रामायण की प्रशस्त गाथा में एक महत्वपूर्ण स्थान है। अब तक रावण इस भ्रम में था कि सीता का अपहरण करके उसने बहुत होशियारी से अपने यहाँ रखा है जहाँ पर देवता लोग भी नहीं पहुँच सकते और पैदल चलनेवाला राम तो यहाँ तक आने की कल्पना तक नहीं कर सकता और सीता देर-सबेर उसके वश में आ ही जाएगी। किंतु अचानक एक कालांतक मध्याहन के समय ने उसे दारुण आघात पहुँचाया जिससे न केवल उसका कठोर हृदय बल्कि सारा राज्य दहल उठा। उसके लिए यह एक खुला अपमान था। साथ ही यह उसके लिए एक भयंकर चेतावनी भी थी जिसने उसकी आँखें खुलवाई उस दहकनेवाले सत्य को देखने के लिए जो कि उसी के अनुयायियों के अत्याचार का लाभ उठाकर हनुमान द्वारा नगर भर में फैलाई ज्वाला के समान भभक रही है। इसलिए यह घटना लंका के लिए एक गंभीर चेतावनी सिद्ध होती है और सीता के लिए लंबी राहत की सांस। हनुमान लंका में घोषित करते हैं कि वे अजेय और सत्य पराक्रम राम का केवल एक विनम्र सेवक मात्र हैं जिनको राम ने उनको प्रारंभिक सर्वेक्षण करने के लिए भेजा है और सुग्रीव के दरबार में लाखों-करोड़ों वानर-वीर हैं जो पराक्रम और मनोबल में या तो उनके समान हैं या उनसे श्रेष्ठ हैं। लंका की संरक्षिका राक्षसी लंकिनी भी लंका के सर्वनाश की भविष्यवाणी सुनाकर अपने प्राण छोड़ती है। अब रावण खेल ही खेल में एक साधारण वानर की दी हुई चुनौती से आतंकित हो जाता है और दिन रात इसी बात पर सोचते सोचते उनके लिए सोना भी कठिन हो जाता है।

इतना साहस का काम, जो कि किष्किंधा में और कोई दूसरा नहीं कर सकता, सफलतापूर्वक संपन्न करने पर भी यह सारा वृत्तांत वे राम को बड़ी विनम्रता से निवेदन करते हैं। वे अपनी सफलता का सारा श्रेय सीता, राम और विश्वात्मा पवन देवता

को देते हैं। वास्तव में उनके इस महान् कार्य में पाँचों तत्व सहयोग देते हैं। सागर का पानी उनको रास्ते में आई सभी बाधाओं से बचाकर सकुशल दक्षिण तट पर पहुंचा देता है। अग्नि देवता उनको शीतलता प्रदान कर शत्रु पक्ष को भस्मसात् कर देता है। धरती और आकाश उनको रोमांचक उड़ान भरने में, अंतरिक्ष में चलते हुए सागर पार करने और सकुशल लंका में उतरने में सहायक होते हैं। अपने अनुभवों का विवरण प्रस्तुत करते समय हनुमान बड़ी नपी-तुली भाषा का प्रयोग करते हैं। लौट आने पर उनके मुंह से निकला पहला वाक्य है—'दृष्टा सीता' (सीता दिखाई दी है)। सारी किष्किंधा इसी समाचार की प्रतीक्षा कर रही है। अपने लंका-अभियान का संक्षिप्त सार हनुमान इन्हीं दो शब्दों में प्रस्तुत करते हैं। बाद में इसी को वे विस्तार से सुनाते हैं—तीन विभिन्न स्तरों पर। पहले, लौट आते ही अपने साथियों को संबोधित करते हुए, उसके बाद सुग्रीव और लक्ष्मण के सम्मुख राम को संबोधित करते हुए और अंत में राम से एकांत में और आत्मीयता के साथ। लंका में अपने अनुभवों का संक्षेपण इन तीन स्तरों पर प्रस्तुत करने में हनुमान की वाग्विदग्धता का पता चलता है। अपनी लंका यात्रा के सारे इतिवृत्त और उसके फ़लागम को संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए हनुमान राम से कहते हैं कि अपनी वाणी में कभी भी हीनता को स्थान न देनेवाली मैथिली ने मेरे शिवात्मक और इष्टतम शब्दों में शांति का अनुभव किया और इससे उनके शोकाकुल मन को सांत्वना मिली। हनुमान के संक्षेपण-कौशल की सबसे बड़ी विशेषता केवल विभिन्न घटनाओं के माध्यम से व्यक्त होनेवाली मनोवृत्ति का प्रत्यक्षीकरण मात्र नहीं है, बल्कि उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों की उपयुक्तता भी है जो कि अपने आपको व्यक्त और अभिव्यक्त कर लेते हैं। सुंदर कांड की वास्तविक सुंदरता यही वाक्-संस्कृति है। सच पूछा जाए तो वाल्मीकि रामायण की सारस्वत सार्थकता भी इसी में है।

हनुमान की कृतकृत्यता और मनोहारिता पर प्रसन्न होकर राम उनकी सराहना करते हैं और उनको प्रगाढ़ परिरंभ से पुरस्कृतकर बड़ी उदारता के साथ कहते हैं कि अभी इस समय तुम को देने लायक और कोई पारितोषिक मेरे पास नहीं है।

अंतिम युद्ध के समय भी हनुमान की भूमिका इसी प्रकार सार्थक सिद्ध होती है। जब विभीषण राम के पास शरणार्थी बनकर आते हैं तब हनुमान का परामर्श ही सबसे अधिक उपयुक्त और कार्यकारी होता है—सुग्रीव तथा अन्य वानर वीरों के मंतव्य की तुलना में। इस संदर्भ में वाल्मीकि हनुमान को 'संस्कार-संपन्न' कहकर उनके व्यवहार का सही वर्णन करते हैं। आरंभ में वे राम की बुद्धि और वाणी की प्रशंसा के साथ अपनी बात का उपक्रम करते हैं और कहते हैं कि देवताओं के गुरू बृहस्पति भी इस विषय में राम से आगे नहीं हैं। इसलिए राम को किसी बात में कोई सलाह देना किसी के बस की बात नहीं है, इसी स्थापना को आगे बढ़ाते हुए अपने पूर्ववर्ती सभी वक्ताओं के वक्तव्य का बड़ी विनम्रता के साथ खंडन करते है और अपना स्वतंत्र विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि विभीषण के सदाशय को देखते हुए उनको आश्रय देना ही अभीष्ट

है, पर अंतिम निर्णय वे राम के ऊपर छोड़ देते हैं। राम भी इसी दिशा में सोच रहे थे। हनुमान के सुचिंतित, सुसंगत और सुसंबद्ध परामर्श से उनका मन प्रसन्न होता है और तदनुसार वे शरणागत विभीषण को आश्रय देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि हनुमान राम के कितने विश्वास-पात्र हैं।

रणभूमि में भी हनुमान सक्रिय भाग लेते हैं। जब राम और लक्ष्मण इंद्रजित् के नागपाश में बंध जाते हैं तो सभी वानर चिंता से जड़ीभूत हो जाते हैं जब कि हनुमान अपने आप वानारों के साथ दोनों राजकुमारों के परिरक्षण में तत्पर रहते है। कुछ ही समय में गरूत्मान् आकर रघुकुल के वीरों को नागपाश से मुक्त कर देते हैं। रावण जो अपने पुत्र इंद्रजित् के पराक्रम से राम और लक्ष्मण को दीर्घनिद्रा में प्रसुप्त समझकर मन ही मन प्रसन्न हो रहा था, अचानक यह समाचार सुनकर हताश और निष्प्रभ हो जाता है और राम को समाप्त करने के लिए धूम्राक्ष नाम के राक्षस को रणभूमि में भेजता है। किंतु हनुमान उसका सामना करके क्षणभर में उसको समाप्त कर देते हैं। उसके बाद इसी प्रकार अकंपन के साथ भी वे घोर युद्ध कर उसे परलोक भेज देते हैं। कुंभ कर्ण के वध के पश्चात् रावण घोर निराशा से विमूढ़ होकर अनेक राक्षसों को रणभूमि में भेजता है, जिनमें से देवांतक और त्रिशिरा नाम के दो राक्षसों को हनुमान निर्मम वध के शिकार बना देते हैं।

केवल विध्वंसक के रूप में ही नहीं, बल्कि उससे भी अधिक एक जीवन-दाता के रूप में हनुमान अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जब इंद्रजित् के एक मायावी अस्त्र के प्रयोग से राम लक्ष्मण और अनेक वानर-वीर बेहोश हो जाते हैं तो केवल जांबवान् और हनुमान होश में रहते हैं। विभीषण भी इस माया से अप्रभावित रहते हैं क्योंकि उनको इस माया का रहस्य मालूम था। जब जांबवान् अर्द्धमूर्छित अवस्था में यह जिज्ञासा प्रकट करते हैं कि हनुमान जीवित हैं या नहीं तब विभीषण आश्चर्य प्रकट करते हैं कि जांबवान् सबसे अधिक हनुमान के बारे में क्यों चिंतित हैं। इस पर जांबवान् कहते हैं कि जब तक हनुमान स्वस्थ और संजीव हैं तब तक किसी को किसी बात की कोई चिंता करने की ज़रूरत नहीं है। तब जांबवान् उनको एक संजीवनी बूटी लाने के लिए हिमालय भेजते हैं और हनुमान उस समूचे पहाड़ को लाकर सामने खड़ा करते हैं जिस पर वह बूटी है। इस बूटी की गंध सूंघते ही राम और लक्ष्मण के साथ सारी सेना पुनरुज्जीवित हो जाती है।

हनुमान इस अद्भुत कार्य को पुन: एक बार संपन्न करके सबको संतुष्ट कर देते हैं जब रावण द्वारा प्रयुक्त शक्ति के प्रभाव से लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं। लक्ष्मण के मृतप्राण शरीर के पास बैठकर राम रोने लगते हैं। तत्काल हनुमान इसी संजीवनी बूटी को लाकर लक्ष्मण को सजीव बना देते हैं।

युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद भी राम और सीता दोनों को हनुमान की सेवाओं की आवश्यकता बनी रहती है। विजय का समाचार हनुमान के माध्यम से हां

राम सीता के पास भेजते हैं। फिर अयोध्या में राम के पुनरागमन का समाचार भी राम के आदेश पर हनुमान ही भरत को सुनाते हैं। राजतिलक के भव्य समारोह में हनुमान अपने आप एक सम्मान्य अतिथि बन जाते हैं जब श्री सीता महालक्ष्मी एक विशिष्ट उपहार (अपने कंठहार) से अलंकृत करने के लिए हनुमान का ही चयन करती हैं। इस विशिष्ट सम्मान के लिए हनुमान की योग्यता का प्रशस्ति पाठ करते हुए प्राचेतस वाल्मीकि कहते हैं—

तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयोनय:।
पौरुषं विक्रमों बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा॥

(तेजस्विता, धैर्य, यशस्विता, दक्षता, क्षमता, विनम्रता, नीतिकुशलता, पुरूषार्थ साधना, जयिष्णुता, मनस्विता—ये सभी गुण सब समय जिस में निवास करते हैं, उसको सीता ने अपने हार से सुशोभित किया है।)

सीता-राम के पुनर्मिलन के पुनीत अवसर पर राम द्वारा सीता को परम प्रीति के प्रतीक के रूप में दिया गया कंठ-हार ही यह उपहार है जो राम की अनुमति लेकर रामपत्नी रामदूत को देती हैं। राम के वामभाग में बैठी हुई वैदेही द्वारा प्रदत्त यह उपहार अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि वैदेही के वैवाहिक जीवन का अत्यंत आनंदमय क्षण आंजनेय की अनन्य सेवा भावना का ही सुखद परिणाम है।

हनुमान केवल रामायण का एक विशिष्ट पात्र ही नहीं, बल्कि देवता के रूप में जन-मानस में प्रतिष्ठित एक दिव्यात्मा भी हैं। राम और सीता के साथ-साथ इनका भी स्मरण किया जाता है। समग्र रामायण में ये तीनों पात्र-राम, सीता और हनुमान—ऐसे हैं जिनकी भारत भर में प्रत्येक आस्थावान् व्यक्ति पूज्य भावना से आराधना करता है। जहाँ भी राम का मंदिर हो, वहाँ पर हनुमान की मूर्ति भी श्रद्धांजलि, कटिबद्ध और नतजानु की मुद्रा में अवश्य विराजमान होती है। केवल हनुमान के भी अनेक मंदिर हैं जहां पर विभिन्न भंगिमाओं में विभिन्न प्रसंगों को चित्रित करनेवाली उनकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठित होती हैं।

रामायण में त्रितय या त्रयी की यह परिकल्पना सीता-राम-आंजनेय के सम्बंध में भी उसी प्रकार चरितार्थ होती है जिस प्रकार सीता-राम-लक्ष्मण अथवा राम-लक्ष्मण-विश्वामित्र के सम्बंध में। विश्वामित्र के साथ गठित प्रारंभिक त्रितय में विश्वामित्र की भूमिका समाप्त होते ही सीता के प्रवेश से दूसरा त्रितय आरंभ होता है। इसी प्रकार दूसरे त्रितय-सीता, राम और लक्ष्मण-में सीता का वियोग घटित होते ही हनुमान का समावेश हो जाता है।

रामायण के प्रमुख पात्रों में इस प्रकार के और भी अनेक 'त्रितय' देखे जा सकते हैं—जैसे, अहल्या, तारा और मंदोदरी। इन तीनों की गणना पाँच महाकन्याओं के अंतर्गत होती हैं। राम के संसर्ग मात्र से अहल्या शुद्ध होती हे। तारा को राम का आशीर्वाद

मिल जाता है। मंदोदरी तो इन तीनों में से विलक्षण इस माने में हैं कि उनको न तो किसी के आशीर्वाद की अपेक्षा थी और न शुद्धीकरण की आवश्यकता थी। यद्यपि उनके पति को किसी भी सुंदर नारी के प्रति मोहजनित आकर्षण होता था, फिर भी वह हमेशा उसके प्रति अनन्य प्रेम भावना रखती थी, उसकी प्रशंसा करती थी, उस पर उनको दया आती थी और जब उसकी मृत्यु हुई तो व्यथित हृदय से अपनी आंतरिक पीड़ा प्रकट की। सीता की पवित्रता और चरित्रबल की वह प्रशंसा करती थी और इसी प्रकार राम की निश्चयात्मिकता और धर्मिष्ठता की भी वह सराहना करती हैं। अपने पति को पराजित करने पर वह राम की भर्त्सना नहीं करती हैं, इसके विपरीत वह अपने पति के ही आक्रामक स्वभाव का खंडन करती हैं। महाकवि सम्राट् वाल्मीकि की वाणी में इस निर्लिप्त और धर्मनिष्ठ आदर्श गृहिणी का चित्रण अत्यंत हृदयग्राही बन गया है।

त्रितय की परिकल्पना का एक और उदाहरण हमें अनसूया, शबरी और स्वयंप्रभा में मिलता है। इन तीनों में राग और द्वेष से एकदम दूर विश्वजनीन प्रेम की प्रतिमूर्ति अनसूया अद्वितीय है। अत्रि महामुनि की महिमामयी पत्नी होने के कारण देवी अनसूया पांच भौतिक जगत् के तीन आयामों से परे है। अनसूया सीता को आशीर्वाद देती है और शबरी राम का आशीर्वाद लेकर परमपद को प्राप्त करती है। किंतु स्वयंप्रभा के बारे में रामायण के अध्येताओं को बहुत कम मालूम है। यह तपस्विनी महिला सीता की खोज में हनुमान की सहायता करती है। यह एकदम एकांतवासिनी और आत्मनिरत योगिनी है। इसीलिए रामायण के अन्यान्य पात्रों में यह अनन्य स्थान ग्रहण करती है और अपने आध्यात्मिक आलोक का सृजन वह अपने आप कर लेती है। इसीलिए वाल्मीकि इस साध्वी को 'स्वयंप्रभा' कहकर बड़ी सांकेतिक भाषा में इस प्रसंग का वर्णन करते हैं। वह अपने आप में अपना परिवेश बना लेती हैं, इसीलिए बहुत कम लोग उनके बारे में जानते हैं।

भरत, सुग्रीव और विभीषण भी एक त्रितय की रूप कल्पना के आधार बन जाते हैं। भ्रातृत्व के तीन प्रकार के वे प्रतिनिधित्व करते हैं। इस भ्रातृमंडल में भरत, जिनको वाल्मीकि भ्रातृवत्सल की पदनिधि से विभूषित करते हैं, एक अपवाद स्वरूप हैं। अपमानित भ्राता सुग्रीव अपने अग्रज से लड़कर, आवश्यक हो तो उसका संहार कर अपनी अपहृत पत्नी को पुन: प्राप्त करने में राम भी सहायता मांगते हैं। यह सही है कि बड़े भाई ने उनका घोर अपमान किया है, पर उसकी प्रतिक्रिया इतनी दारूण बनाने की संभवत: आवश्यकता नहीं थी। सुग्रीव स्वयं इस बात को स्वीकार करते हैं, पर तब तक प्रतिक्रिया की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। इस विषम परिस्थिति को राम अपनी समयज्ञता के साथ समीकृत कर देते हैं। विभीषण बिल्कुल अलग ढंग के है। वह अपने बड़े भाई का परित्याग कर देते है—लेकिन तभी जब बड़े भाई स्वयं अपनी शालीनता और मर्यादा को तिलांजलि देते हैं। अग्रज की अत्याचारिता के कारण लंका पर मंडराती हुई महाप्रलय

से अपने को बचाने के लिए वे धर्म मार्ग का आश्रय लेते हैं। जिस स्वामी का आश्रय वे लेते हैं उनके प्रति अंत तक निष्ठा रखते हैं और अपने कर्त्तव्य का पालन करने में अपने सगे संबंधियों का मोह भी छोड़ देते हैं। यहाँ तक कि पापी रावण की अंत्येष्टि करने में भी वे संकोच करते हैं। पर धर्मज्ञ राम उनको समझाते हैं कि सारी शत्रुता मृत्यु के साथ समाप्त होती है, इसलिए रावण उनके लिए उतने ही आप्त हैं जितने स्वयं अपने लिए हैं।

मंथरा, शूर्पणखा और त्रिजटा एक और त्रयी है। राम के अयन को आगे बढ़ाने में सद्भावना से हो या स्वार्थ से हो या ईर्ष्या या द्वेष से हो, सहयोग देना इन तीनों का सामान्य लक्षण है। मंथरा का उद्देश्य घनीभूत ईर्ष्या से प्रेरित है। रात ही रात में वह अयोध्या नरेश के भविष्य को बदल देती है। वाल्मीकि उसको पापदर्शिनी (पाप और केवल पाप को ही देखनेवाली) और कैकेयी की सहोषिता (साथ-साथ रहनेवाली) कहते हैं। वह हमेशा कैकेयी के अंतर्मन में बैठी रहती है और अपने विकट रूप को प्रकट करने का समय आने पर वह बाहर निकल आई। मंथरा की मंत्रणा के पीछे उसका अपना कोई स्वार्थ या प्रयोजन नहीं था जबकि शूर्पणखा का अपना निजी स्वार्थ था। परंतु वह अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए आवश्यक योग्यता नहीं रखती है, इस बात को वह कभी समझ नहीं पाई। किंतु उसकी यह छोटी-सी गलती लंका के सर्वनाश का बीज बन गई; परंतु अंततः वह मानव-कल्याण के लिए वरदान भी सिद्ध हो गई। संसार को लंकेश्वर के आतंक और अत्याचार से मुक्त कराने का श्रेय उसी को मिलना चाहिए। त्रिजटा बिलकुल विलक्षण स्वभाव की है; राक्षसी होने पर भी राक्षस स्वाभाव से मुक्त है। यद्यपि सीता को भय और भर्त्सना के माध्यम से रावण की ओर आकृष्ट करना उसके लिए निर्धारित कर्तव्य कर्म है, फिर भी स्वप्न में राम की विजय, सीता-राम का पुनर्मिलन और लंका का सर्वनाश आदि देखने के बाद उसका स्वभाव एकदम बदल जाता है। वह लंका में एक अपवाद बन जाती है। जिस प्रकार वह अपने स्वप्न का वृत्तांत अपनी सहेलियों को सुनाती है, उसको ध्यान से पढ़ने पर उसमें परम प्रकाश की प्रशस्ति में प्रणीत पवित्र मंत्र गायत्री का गुणगान गूँज उठता-सा प्रतीत होता है।

रामायण के सभी पात्र बहु-आयामी हैं और इसलिए उनका गहन अध्ययन ज्ञानवर्द्धक होता है। आखिर ये सभी पात्र एक ऐसे रस द्रष्टा की कारयित्री प्रतिभा के प्रसून हैं जिनको बहती नदी की तरंगों में एक पावन मानव का अंतरंग दिखाई देता है। यही कलाकार की मानवीय मनोहारिता है।

5

मानवीय मनोहारिता

सन्मनुष्यता का सात्विक अन्वेषण ही वाल्मीकीय रामायण के प्रणयन का प्रमुख प्रयोजन है। एक ऐसे मानव को महाकवि अपने काव्य का नायक बनाना चाहते थे जिसकी मानवीय मनोहारिता के सामने, उसकी पारदर्शक संप्रेषणशीलता के कारण, दिव्यत्व भी मंद पड़ जाता है। राम का अयन जिसको वाल्मीकि 'रामायण' कहते हैं इसी प्रयोजन मूलक अभियान या अन्वेषण को लक्ष्य बनाकर चलता है जिसके कर्णधार राम नरत्व की गरिमा और दिव्यत्व की आभा का दुर्लभ सामंजस्य साथ लिए चलते हैं। उन्होंने इस आभा को अपने भीतर और केवल अपने तक सीमित रखकर बाहरी दुनिया में विराट् प्रेम, स्नेह, दया, पुनरुत्थान और पुनर्वासन का परिमल फैला दिया है। महाकवि के महामानव राम ने इन बुनियादी मानव-मूल्यों को केवल उद्बोधन तक सीमित न रखकर आचरण के परिधान में प्रस्तुत किया है। प्रधान पात्र राम के इन गुणों का प्रभाव रामायण के लगभग सभी पात्रों पर चाहे वे अच्छे हों या बुरे—परिलक्षित होता है।

राम जैसे 'विदितात्मा' (जो अपनी वास्तविक अस्मिता को पहचानते हैं) के लिए अच्छे-बुरे केवल सापेक्ष शब्द हैं। सार्वभौम और जीदकारुण्य भावना से देखने पर उनके लिए इनका कोई निरपेक्ष महत्व नहीं बनता है। यदि मानवीयता को साहस, संकल्प-शक्ति और अनुक्रोश से संपन्न किया जाए तो 'असत्' को 'सत्' में बदला जा सकता है या कम से कम उसमें सुधार लाया जा सकता है। इस मौलिक नीति और जीवन-दर्शन के प्रभाव के पर्याप्त उदाहरण रामायण में सर्वत्र पाए जाते हैं।

सत् और असत् का यह संप्रदान और अपादान, जो कि राम के अयन की एक अंतर्धारा है, एक विचित्र पात्र मारीच और उसकी माँ ताटका के साथ आरंभ होता है। मारीच, मूलत: एक प्रतिष्ठित वंश का था क्योंकि उसकी माता एक यक्षी थी। परंतु दोनों किसी शापवश राक्षस बन गए। इस प्रकार वे दोनों ऋषि-मुनियों के धार्मिक कृत्यों में बाधा डालकर आतंक फैलाने लगे। इस आतंक से आश्रम-मंडल को मुक्त करने के लिए विश्वामित्र ने राम का सहयोग मांगा। विश्वामित्र के कहने पर राम ताटका का संहार करते हैं हालांकि प्रारंभ में वे स्त्री का वध करने में तनिक संकोच करते हैं। परंतु मारीच का वे वध नहीं करते, केवल उसको सख्त सबक सिखाकर उसके प्राणों

की रक्षा करते हैं। यहाँ पर राम की सात्विक मानवीयता काम करती है। किसका प्राण-हरण करना है और किसको केवल कठोर दंड देकर जीवन भर याद रहनेवाला सबक सिखाना है, इस बात में राम अपने विवेक से काम लेते हैं। वाल्मीकि के अनुसार, राम मानव-अस्त्र का प्रयोग कर मारीच और कुछ राक्षसों को दूर प्रांतर में पहुँचा देते हैं और आग्नेय, वायव्य आदि अस्त्रों से सुबाहु तथा दूसरे राक्षसों का संहार कर देते हैं। उनका मुख्य उद्देश्य उनका संहार करना नहीं है, परंतु यथासंभव उनका उद्धार करना है। मारीच के प्राण, कुछ समय के लिए ही सही, बचाकर राम ने न केवल उनके स्वभाव को सुधारने में ही नहीं, बल्कि 'समर में शांति' स्थापित करने में भी सफलता प्राप्त की। यह राम का साधारण 'समर-तंत्र' है जिसका प्रयोग उन्होंने अपने प्रारंभिक समर से लेकर रावण के संहार तक किया था। रावण का संहार करने में उनका उद्देश्य उनकी जीव कारुण्य भावना थी क्योंकि उनको मालूम था कि रावण के जीवित रहने से सारे संसार का सर्वनाश अवश्यंभावी है।

मारीच के प्राण बचाकर राम ने उसको साधु-पुरुष बना दिया। जब रावण सीता के अपहरण में मारीच की सहायता मांगने जाता है तो मारीच रावण से स्पष्ट कह देता है कि राम साधारण मनुष्य नहीं है, वे धर्म के मूर्त रूप (विग्रहवान धर्म:) हैं। कोई भी उनके सामने खड़े होकर उनसे युद्ध नहीं कर सकता क्योंकि संहार और संरक्षण के सभी संभव अस्त्र-शस्त्रों पर उनका अद्भुत अधिकार है। राम के उत्कट भक्त के रूप में परिणत मारीच रावण से कहता है कि मुझे तो सारा दंडक वन राममय दिखाई देता है क्योंकि जहाँ देखो वहाँ राम ही राम है। अंत में उसे राम के हाथों में ही अपने प्राण अर्पित करने पड़े। परंतु इसी में उसका आत्मतोष था क्योंकि रावण के हाथ मरने से कहीं अधिक अच्छा है राम के हाथ मरना। मानवता का निर्माण और संहार का परिहार--ये दो प्रमुख जीवन-मूल्य हैं जिनको कवि कोकिल वाल्मीकि ने अपनी कालजयी कृति में उद्घोषित किया था। इन्हीं दो मूल्यों पर आधारित राम की मानवीय विचार-सरणी सामने यहाँ पर तीन चुनौतियाँ के आती हैं। ताटका, मारीच और रावण तीनों आक्रामक और अत्याचारी थे। फिर भी राम उनको बचाना चाहते थे। किंतु जब उनकी धीरता और सहनशीलता ने उनको निराश कर दिया तब उन को विवश होना पड़ा।

रावण को रणभूमि में पहली बार देखते ही सामने खड़े अपने परमशत्रु की वे हृदय से प्रशंसा करने लगते हैं। रावण के पराक्रम, दीप्ति ओर बाह्य तेज की सराहना करने के साथ उस पर उनको दया भी आती है—पर नारी और पर संपत्ति के प्रति उसकी कमज़ोरी पर। अंतत: उनको उसका संहार करना ही पड़ता है ताकि संसार में सुख, शांति और समृद्धि रहे। रावण भी राम के लोकोत्तर तेज को पहचानता है। परंतु वह अपने को सुधारने के अवसर खो चुका है। जब राम अपने अगोचर अस्त्रों के प्रयोग से सारी राक्षस-सेना को भस्मसात् कर देते हैं तो रावण समझ जाता है कि यह राम के रूप में नारायण ही यह सब कर रहे हैं। रावण की उदारमना पत्नी मंदोदरी राम

का सबसे अधिक गुणगान करती है। अपने भावावेश की उत्कट अभिव्यंजना में भी वह राम के आदर्श चरित्र और सीता की असाधारण पतिपरायणता की मुक्त कंठ से प्रशंसा करती हैं। साथ ही अपने महापराक्रमी पति रावण पर दया प्रकट करती है जो कि काल-चक्र के व्यूह में पड़कर अपने दयनीय पर्यवसान का आप कारण बन गया। इस प्रसंग में मंदोदरी द्वारा व्यक्त भावुक और भावगर्भित उद्‌गारों से उनकी व्यवहार कुशलता, विवेकशीलता और मानसिक संतुलन का पता चलता है। यह भी स्पष्ट होता है कि लंका में भी सद्‌बुद्धि का प्रचलन है हालांकि रावण इससे लाभान्वित नहीं हो पाया।

भाग्य के मारे रावण के सम्बंध में कुंभकर्ण भी मंदोदरी द्वारा व्यक्त विचारों का समर्थक प्रतीत होता है। जब रावण ने एक आपातकालीन बैठक में अपने अन्य मित्रों के साथ कुंभकर्ण और विभीषण का अभिमत मांगा तब कुंभकर्ण ने अपने भाई की गलती की स्पष्ट आलोचना करते हुए कहा कि यह जानते हुए भी कि राम ने अकेले ही जनस्थान में बड़ी भारी सेना का संहार किया है, उनकी पत्नी का अपहरण करना विवेक शून्य और अविचारित आचरण था। बाद में राम से युद्ध करने के लिए उसे जगाया गया तब भी उसने इसी बात को दुहराया। किंतु यह समझकर कि अब इस दशा में उनसे बहस करने से कोई लाभ नहीं है, प्राणों की परवाह किए बिना लड़ने और भाई की मान-मर्यादा की रक्षा करने का उसने वचन दिया और निष्ठावान् और प्रियतम सहोदर के रूप में अपने प्राणों की आहुति दी। वाल्मीकि कुंभकर्ण के चरित्र का इतना प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत करते हैं कि पाठकों को उसमें साहस, दृढ़ संकल्प, अनुकंपा और स्वार्थ रहित त्याग भावना की हृदयग्राही छवि दिखाई देती है।

शूर्पणखा में भी गरिमा और गौरव का अभाव नहीं है। कमी उसमें केवल यही है कि राम और लक्ष्मण के परिहास को सही परिप्रेक्ष्य में वह समझ नहीं पाती है। बिचारी महिला दोनों राजकुमारों में से कम से कम एक को अपना बनाने का दयनीय प्रयास करते हुए कभी उधर और कभी इधर जाकर स्वयं हास्यास्पद बन जाती है। जब अंततः सारा कांड उसकी अवमानना में परिणत हो जाता है तो वह अपने भाई रावण के पास जाकर सारा वृत्तांत बड़ी चालाकी से उसे सुनाती है। वह अपने भाई की स्त्री-लोलुपता को अच्छी तरह जानती है। इसीलिए वह सीता के लोकोत्तर सौंदर्य का विस्तार से वर्णन कर उसके मन को लुभाती है। एक हल्का-सा झूठ बोलने में भी वह संकोच नहीं करती है। वह कहती है, "मैंने तुम्हारे लिए उसे मनवाने की कोशिश की और इसी का नतीजा है कि मेरी नाक कट गई।" एक आदर्श शासक में क्या-क्या गुण होने चाहिए, इसका भी विस्तृत विवेचन वह रावण के सामने करती है। इससे पता चलता है कि वह शासन-प्रशासन आदि की भी अच्छी जानकारी रखती है। तत्वतः प्रबल, काम करने में प्रचंड, पर आशय को प्रकट करने में अबोध—इस महिला का चित्रण करने में आर्ष कवि वाल्मीकि मानवीय गरिमा और पाशविक विद्वेष के बीच संतुलन निभाते हैं।

इंद्रजित् को वाल्मीकि निर्लिप्त दृष्टि और रचनात्मक कल्पना से संपन्न व्यक्ति के रूप में चित्रित करते हैं। अपराजेय पराक्रम से संपन्न यह समर-वीर इंद्र को पराजित कर 'इंद्रजित्' की उपाधि से विभूषित हुआ। उससे पूर्व उसका उपनाम मेघनाद था क्योंकि वह बादल की तरह गरजता था। वह प्रगाढ़ पितृभक्त था और आखिरी सांस तक उसने अपने पिता का समर्थन किया। उसने कभी भी अपने पिता की आलोचना नहीं की, बल्कि अपने पिता को छोड़कर चलने वाले विभीषण की निंदा की। युद्ध में उसने कई बार महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। युद्ध के प्रारंभिक चरण में ही उसने नागास्त्र का प्रयोग कर राम और लक्ष्मण को नागपाश में बांध दिया, फिर दूसरे चरण में हनुमान को छोड़कर शेष समस्त शत्रुसेना को मूर्च्छित कर दिया। इस भयंकर संकट से पहले चरण में गरुत्मान् ने और दूसरे चरण में हनुमान ने सबको बचाया। उसके पास अद्भुत माया और यौगिक शक्तियां थीं जिनके प्रयोग से वह अपने चारों ओर अंधेरा फैलाकर स्वयं अदृश्य हो सकता था और लड़ते समय शत्रु उसको देख नहीं पाते थे। उसने माता सीता का एक चित्र बनाकर हनुमान के सामने उस मूर्ति का वध किया और हनुमान को विश्वास हो गया कि वास्तव में सीता का वध हो चुका है। बाद में जब सचाई का पता चलता है और हनुमान उसे कहते है कि स्त्री का वध करना न्यायसम्मत नहीं है तो वह अपनी नीति को स्पष्ट करते हुए कहता है कि शत्रु का मनोबल क्षीण करने के लिए कुछ भी किया ज़ा सकता है। अंत में वह एक ऐसे यज्ञ को अनुष्ठित करने के लिए जिससे वह जयप्रद रथ और शक्तिशाली अस्त्र पा सकता है, योजना बनाकर यज्ञशाला में प्रवेश करता है तब लक्ष्मण हनुमान और विभीषण सहसा उस पर आक्रमण कर उसको रणभूमि में ज़बरदस्ती ले जाते है और लक्ष्मण द्वारा उसका वध किया जाता है। हनुमान और विभीषण के सहयोग के बिना लक्ष्मण अकेले यह विजय प्राप्त नहीं कर सकते थे। इंद्रजित ऐसे पराक्रमी पुत्र थे जिसकी मृत्यु रावण के लिए अशनिपात थी। इंद्रजित् का सबसे बड़ा गुण यह था कि उसने कभी भी अपने स्वार्थ के लिए कोई पाप नहीं किया था। उसने जो कुछ किया, केवल अपने पिता को सहारा देने के लिए किया था। इस दृष्टि से वह दशरथ के दत्तचित्त पुत्रों के समकक्ष माना जा सकता है; पर दुर्भाग्य से वह रावण जैसे जघन्य पिता का पुत्र बन गया।

जैसे लंका में, वैसे किष्किंधा में भी वाल्मीकि द्वारा निरूपित कुछ पात्रों में प्रच्छन्न या प्रकट रूप में सौहार्द और भ्रातृत्व की भावना देखने को मिलती है। वाली और सुग्रीव प्रारंभ में परस्पर प्रेम भावना से पले हुए भाई थे। स्वभाव में अंतर के कारण और मुख्यत: वाली के जल्दबाज़ी में किए गए आचरण के कारण दोनों में शत्रुत्व उत्पन्न हो गया। कितु दोनों के हृदय में एक दूसरे के प्रति प्रेम है और दोनों की आकृति भी मिलती जुलती दिखाई देती है। उनका यह रूप-सादृश्य इतना अधिक है कि वाली और सुग्रीव के प्रथम द्वंद्व युद्ध के समय राम पहचान नहीं पाते कि उनमें से कौन वाली है और कौन सुग्रीव। जब वाली सुग्रीव की ललकार सुनकर युद्ध के लिए प्रस्थान करने लगते हैं तो तारा और वाली के बीच जो संवाद होता है, उससे पता चलता है कि

सुग्रीव के प्रति दोनों में कितनी आत्मीयता है, कितना वात्सल्य और प्रेम है। तारा बार-बार वाली से निवेदन करती है कि वह सुग्रीव के साथ प्रेम ओर स्नेह से व्यवहार करे। वाली तारा की बात बहुत हद तक मान लेता है और उसको आश्वासन देता है कि वह सुग्रीव का संहार नहीं करेगा, केवल उसको कठोर आघातों से सबक सिखाकर छोड़ देगा। वाली के निर्मम और निष्ठुर व्यवहार के बावजूद सुग्रीव के मन में भी अपने अग्रज के प्रति आदर और प्रेम है। जब अंततः वाली का संहार हो जाता है और तारा बाली के पास बैठकर विलाप करने लगती है तो सुग्रीव का कोमल हृदय विक्षुब्ध हो जाता है। अपने आप पर दया और आक्रोश प्रकट करते हुए वह पछताता है कि अपने अग्रज के प्रति उसे इतना घोर अन्याय नहीं करना चाहिए था और इसके प्रायश्चित के रूप में वह अपने प्राण त्यागने का निर्णय करता है। राम अपनी विशिष्ट प्रबंध-पटुता के माध्यम से इस संकट का समाधान निकालकर तारा और सुग्रीव दोनों को वस्तुस्थिति के प्रति सजग कर देते हैं। वे वाली को भी समझाते हैं कि उनको अपने छोटे भाई के साथ इतनी निष्ठुरता नहीं दिखानी थी और इसी का परिणाम यह दुःखद् विराम है। अंतिम सांस लेते समय वाली अपने पुत्र अंगद के लालन-पालन का दायित्व सुग्रीव को सौंपकर उनको सलाह देता हैं कि वह सदा तारा की मंत्रणा के अनुसार काम करता रहे। वह सुग्रीव से अपनी सारी गलतियों के लिए क्षमा भी मांगता है हालांकि वह सुग्रीव का बड़ा भाई है। अंतिम उपहार के रूप में, वह सुग्रीव को अपना स्वर्णिम कंठहार प्रदान करता है जिसके साथ उसकी सारी शक्ति, प्रभुता, वैभव और तेज सुग्रीव को प्राप्त हो जाते हैं। दोनों भाइयों के बीच अंतिम समय घटित सौहार्द का यह संस्पर्श पहले के समस्त पापकृत्यों और कमियों का परिमार्जन कर देता है जिनके कारण वे एक दूसरे से दूर हो चुके थे।

सुमंत्र, गुह (केवट) और जटायु जैसे कुछ गौण पात्र भी वाल्मीकि में हैं जिनका राम के अयन की विभिन्न दशाओं में मानव-मूल्यों के संवर्धन में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सुमंत्र का उल्लेख राम के जन्म के पहले से ही मिलता है। सुमंत्र ने ही राजा दशरथ को यह सलाह दी कि ऋष्यश्रृंग नाम के एक महान ऋषि के सहयोग से वे पुत्र कामेष्टि का अनुष्ठान करें ताकि उनको पुत्र लाभ हो। पुराणों की भविष्यवाणी के आधार पर वे यह सलाह देते हैं। तदनुसार तीन रानियों से चार पुत्र पैदा होते हैं। इसलिए इक्ष्वाकुवंश में राम तथा उनके तीन भाईयों का आविर्भाव सुमंत्र के सुचिंतित विचार का ही परिणाम है। तभी तो वाल्मीकि उनको 'पुराणविद्' और 'मंत्रकोविद' कहते हैं। सुमंत्र राम के रथ के सारथी हैं। इसके अलावा, राजपरिवार में वे संवाद-संधायक और परामर्शदाता भी हैं। राम के प्रति उनके मन में बहुत बड़े सम्मान की भावना है और उनसे बड़ी अपेक्षाएं भी हैं। राजतिलक का प्रस्ताव राम के समाने रखने के लिए दशरथ ने जब राम को बुला भेजा तब सुमंत्र ही राम को दशरथ के पास ले गए। फिर जब यह प्रस्ताव कैकेयी के हस्तक्षेप से निरस्त हो जाता है तब भी अर्ध-चेतन अवस्था में लेटे हुए व्यथित दशरथ की ओर से राम को अपने यहाँ बुलाने के लिए कैकेयी सुमंत्र

को ही भेजती है। जब सुमंत्र कैकेयी के आदेश का पालन करने में आगा-पीछा करते हैं तो दशरथ साहस बटोर कर सुमंत्र से कहते हैं कि मैं राम का सुंदर मुखमंडल शीघ्र ही देखना चाहता हूं। तब भी सुमंत्र बाहर जाकर कुछ ही देर में लौट आते हैं और राजा से कहते हैं कि बाहर सभी राजप्रमुख आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं और राजतिलक देखने के लिए उत्सुक हैं। इस पर राजा दशरथ कुछ विवश और कुछ विह्वल होकर उनको वापस भेजते हैं और अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए कहते हैं। इस अवसर पर सुमंत्र का मानस-मंथन और कैकेयी के महल से राम भवन तक उनका यानाभियान शब्द शिल्पी वाल्मीकि की भाषा में प्रत्यक्ष समीक्षा का रूप धारण करते हैं। वनवास की आज्ञा लेकर कैकेयी के महल से बाहर निकले राम संस्कार और संयम का परिचय देते हुए रथ को छोड़कर पैदल चलना पसंद करते हैं। इस आकस्मिक आमूल परिवर्तन को देखकर सुमंत्र स्तब्ध और क्षुब्ध हो जाते हैं। जब राम सीता और लक्ष्मण को साथ लेकर वन जाने की अनुमति मांगने राजा दशरथ के पास आते हैं तो सुमंत्र कैकेयी के सामने और वशिष्ठ के पार्श्व में खड़े होकर अपना क्रोध और आक्रोश प्रकट करने में संकोच नहीं करते और इस भत्सर्ना में वशिष्ठ भी उनका समर्थन करते हैं। वे घोषित कर देते हैं कि मैं तो राम के चरण चिह्नों का अनुसरण करते हुए उनके साथ ही चलूँगा। आपकी कुटिल योजनाओं और क्रूर चर्या का मैं तनिक भी समर्थन नहीं करूँगा। किंतु कैकेयी अपनी बात पर डटी रहती है और राम निकल पड़ते हैं। सौभाग्य से जनपद से बाहर जाने तक राजमहल के रथ का उपयोग करने के लिए पिताजी के किए अनुरोध को राम स्वीकार करते हैं। सुमंत्र तदर्थ आधार पर ही सही संतुष्ट हो जाते हैं ओर 'महत्-त्रयी' को अपने रथ पर बिठाकर चल पड़ते हैं।

गंगा नदी को पार करने तक सुमंत्र को राम के सान्निध्य का आनंद मिलता है। जब राम उनको अपने पास बुलाकर बड़ी आत्मीयता के साथ अयोध्या में अब तक उनके सारथ्य के मधुर क्षणों का स्मरण करते कराते हुए अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करते हैं तो सुमंत्र का मन सुमन की तरह खिल उठता है। राम की शब्द-माधुरी को अमृत की तरह अपने कर्ण-युगल में बसाते हुए सुमंत्र मंत्रमुग्ध होकर प्रतिभाषित करने के लिए शब्द नहीं ढूँढ़ पाते। उस दिन रात को गुह के साथ बैठकर उनके जो विलक्षण क्षण व्यतीत होते हैं, वे सदा-सदा के लिए केवल उनके लिए ही नहीं, बल्कि वाल्मीकि के प्रबुद्ध पाठक-समाज के लिए भी चिरस्मरणीय बन जाते हैं। राम के दोनों आराधक रातभर जागरण की प्रजागर भावना में लीन होकर महान् आत्मा राम के बारे में बात करते बैठे रहते हैं। सुमंत्र तो खाली रथ लेकर अयोध्या लौटना बिलकुल नहीं चाहते। किंतु राम किसी प्रकार उनको समझा बुझाकर उनको वापस भेजते है। फिर भी वे गुह के यहाँ एक दिन रुककर राम के प्रत्यागमन की सांयोगिक संभावना की प्रतीक्षा करते हैं। आखिर जब वे रथ चलाने का प्रयास करते हैं तो घोड़े भी आगे बढ़ने में सहयोग नहीं दे पाते। इस मार्मिक प्रसंग का वर्णन अयोध्या लौटने पर सुमंत्र दशरथ को सुनाते हैं तो ऐसा लगता है कि राम की मानवीय मनोहारिता उनके घनिष्ठ परिजनों और पुरजनों

की सीमा को पार कर पशु-हृदय को भी वह स्पंदित करने लगी है। राम, सीता और लक्ष्मण गंगा पार करने से पहले सुमंत्र को विदाई की जो भावभीनी बातें कहते हैं, उनसे सुमंत्र स्वयं भाव-विह्वल हो जाते हैं और राजा दशरथ और राम-माता कौसल्या को उनकी भावुकता को यथावत् संप्रेषित करने लगते हैं। परंतु इस यथार्थ वर्णन से वृद्ध दंपति के मन में तुरंत राम के पास जाने की तीव्र लालसा उत्पन्न होती है तो सारे प्रसंग को दार्शनिक रूप देकर मंत्र कोविद सुमंत्र उनको सांत्वना देते हुए कहते हैं :—

न शोच्यस्ते न चात्मा ते शोच्यो नापि जनाधिपः।
इदं हि चरितं लोके प्रतिष्ठास्यति शाश्वतम्॥

(माता जी, इसमें चिंता करने की कोई बात नहीं है, न अपने लिए और न राजा के लिए। यह जो कुछ हो रहा है, यह संसार में एक शाश्वत इतिहास बनाने जा रहा है।)

यहाँ पर महाकवि वाल्मीकि स्वयं सुमंत्र बनकर अपने महामानव के ऐतिहासिक जन कल्याणकारी अभियान को सार्वकालिक और सार्वत्रिक घोषित करते-से प्रतीत होते हैं। एक साधारण राज-सारथी के रूप में प्रारंभ कर राजवेत्ता, तत्ववेत्ता और अंत में प्रवक्ता के रूप में विकसित सुमंत्र ने यह सारी क्षमता राम की मानवीय मनोहारिता और आध्यात्मिक तेजस्विता से प्राप्त की है।

वाल्मीकि के शब्दों में राम के 'आत्मसखा' के रूप में राम के अयन में प्रवेश करने वाले गुह भी एक रहस्यमय व्यक्तित्व है। जन्म से निषाद कुल का होकर भी श्रृंगवेर पुर के राज्य क्षेत्र के ये अधिपति बन गए जिनके अंदर अनेक नाविक और आश्विक रहते थे। ये लोग अयोध्या के लिए सीमा रक्षक की भूमिका निभाते थे। अपने राज्य में राम का भव्य स्वागत करने के बाद गुह उनका बड़े प्रेम से अतिथि सत्कार करते हैं और अपना राज्य भी उनको देने के लिए तैयार हो जाते हैं। राम उनको गले लगाकर उनके स्नेहपूर्ण स्वागत के लिए आभार प्रकट करते हैं, किंतु लक्ष्मण द्वारा स्वयं लाए गए शीतल जल को छोड़कर वे आहार के रूप में कुछ भी स्वीकार नहीं करते। जो घोड़े उनको यहाँ तक ले आए हैं, उनको खाना खिलाने के लिए वे गुह से कहते हैं क्योंकि वे एक दो दिन में इन घोड़ों को भी विदा करनेवाले हैं। गुह के राज्य में सुख, शांति और समृद्धि के बारे में भी राम जिज्ञासा प्रकट करते हैं। जब गुह लक्ष्मण को विश्राम करने के लिए कहते हैं तो लक्ष्मण गुह से बात करते हुए रात बिताने में ही अधिक आनंद का अनुभव करते हैं। अगले दिन गुह नाव का प्रबंध करते है जिस पर सीता, राम और लक्ष्मण गंगा पार कर अपना वनवास आरंभ करते हैं।

गुह के दर्शन फिर तब होते हैं जब भरत अपने भाई राम को अयोध्या वापस बुला लाने उस राज्य से होकर चलते हैं। विशाल सेना को लेकर आनेवाले भरत को देखते ही गुह को संदेह होता है। किंतु जब वास्तविकता का पता चलता है तो वे उनका प्रेम से स्वागत सत्कार करते हैं और गंगा पार करने में उनकी बृहत् सेना भी

सहायता करती हैं। इस प्रसंग में गुह के लिए वाल्मीकि एक सार्थक संज्ञा का प्रयोग करते हैं—'गहन-गोचर' (गहराई में जाकर जाननेवाला और गहराई में जाने पर ही समझ में आने वाला)। उस समय वास्तव में गुह भरत के हृदय के भीतर छिपी हुई वास्तविकता को समझने का ही प्रयास कर रहे थे—किंतु बड़ी सात्विक विनम्रता से उनके सामने कर बद्ध खड़े होकर। गुह की इस गहराई को स्पष्ट करने के लिए वाल्मीकि इस शब्द को दो-तीन बार दुहराते हैं। इस 'गहन गोचर' गुह को जब पता चलता है कि भरत का हृदय आकाश की तरह निर्मल है तो वे सारी रात भरत के साथ बात करते हुए आनंद से बिताते हैं। लक्ष्मण कितने महान्, उदार और सात्विक हैं, इसके बारे में गुह बड़े विस्तार से भरत से कहते हैं। सीता, राम और लक्ष्मण को अपने अतिथियों के रूप में पाकर वे अपने को धन्य समझते हैं। राम से बढ़कर इस संसार में मेरे लिए और कोई वस्तु प्रियतर नहीं हैं, यह लक्ष्मण का वाक्य था जिसको गुह भरत के सामने दुहराते हैं। राम, सीता और लक्ष्मण के बारे में भरत कई प्रश्न पूछते हैं, जैसे वे कहाँ सोए थे, क्या खाया था, क्या कहा था आदि आदि। इन सबका उत्तर हृदयंगम भाषा में गुह देते हैं। उनकी सारी बातें सुनने के बाद भरत स्वयं वनवास के अनुरुप संयत जीवन व्यतीत करने का संकल्प कर लेते हैं।

इस प्रकार अयोध्या के चारों राजकुमारों के साथ गुह का संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण है। वास्तव में राम का वनवास गुह के राज्य क्षेत्र से ही आरंभ होता है और 14 वर्ष के वनवास के समाप्त होने पर वे फिर भरद्वाज के आश्रम में 'महत्-त्रयी' से मिलते हैं। यदि भरत को आकाश की तरह निर्मल कहा जाए तो गुह को अग्नि के समान पवित्र माना जा सकता है। राम के दर्शन मात्र से गुह अपनी सुध-बुध खो कर अपना सर्वस्व अपना राज्य भी उनके चरणों में समर्पित कर देते हैं। राम तो उनके हृदयेश्वर हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम की पुरुषार्थ साधना उनके वनवास के जीवन में केवल स्त्री-पुरुष, साधु-संत, देव-दानव आदि तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि पशु-पक्षियों तक व्याप्त थी। जटायु का नाम इसी संदर्भ में लिया जा सकता है। पंचवटी के मार्ग पर राम को यह विराट् पक्षिराज दिखाई देता है। बलिष्ठ पंखों से हृष्ट-पुष्ट इस प्राणी को देखकर राम इसे राक्षस समझते हैं। किंतु जब जटायु अपना परिचय देते हुए अपने को दशरथ का आप्त मित्र बताते हैं तो राम उनको अपने पिताजी का आत्मसखा समझकर आदर-सत्कार के साथ उनसे बात करते हैं। जटायु अपना वंशानुक्रम बताकर दोनों भाइयों की अनुपस्थिति में सीता की सुरक्षा का दायित्व स्वीकार करने के लिए अपनी तत्परता दिखाते हैं। जटायु की बातों में राम को पिता का वात्सल्य याद आता है और वंचित वात्सल्य को पुन: प्राप्त करने की भावना से जटायु के सामने घुटने टेकते हैं और उनको गले लगाते हैं।

जटायु की अभीष्ट सहायता के समुचित उपयोग के लिए सही अवसर आ ही जाता है जब रावण सीता का अपहरण करने आता है। असहाय अवस्था में सीता चेतन-

अचेतन समस्त जीव-राशि से अनुरोध करती है कि अपहरण का यह समाचार कोई राम तक पहुंचा दे जब वे पर्णशाला लौट आए। सीता का यह आर्तनाद केवल जटायु सुन पाते हैं और सुनते ही थोड़ी देर के लिए ही सही रावण के मार्ग को एकदम अवरुद्ध कर देते हैं। अपनी सारी शक्ति लगाकर वह रावण से लड़-झपटकर उसके रथ को चूर-चूरकर देते हैं, सारथी को समाप्त कर देते हैं और अंत में अपने प्राणों की आहुति भी देते हैं। यह भली भांति जानते हुए भी कि रावण जैसे शक्तिशाली राक्षस का वह सामना नहीं कर पाएंगे, द्वंद्व युद्ध के लिए उसको ललकार कर अंतिम सांस तक प्रतिरोध करते हैं। सीता को इस घोर विपत्ति से बचाने का वह पूरा पूरा प्रयास करते हैं, किंतु उनके प्राण भी सीता को इस अपनयन से बचा नहीं पाते। फिर भी अपनी अदम्य इच्छा-शक्ति से वह अपने प्राणों को तब तक रुकवा लेते हैं जब तक राम वहाँ नहीं पहुंचकर सीता के संबंध में जिज्ञासा न करें।

प्रारंभ में जटायु को खून से लथपथ अंगों से जमीन पर लेटे हुए देखक, राम हड़बड़ी में इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इसी पक्षी ने सीता को अपना भक्ष्य बना लिया होगा। किंतु जब जटायु सारा वृत्तांत सुनाते हैं तब राम रो रोकर टूट पड़ते हैं और उनको अपने गले में समेट लेते हैं। वे अपने भाग्य को कोसने लगते हैं जिसके कारण वे केवल राज्य से वंचित ही नही हुए बल्कि घर छोड़कर वन में भागना पड़ा, अपनी पत्नी से दूर कर दिए गए और अपने प्राण न्यौछावर कर स्वामी की सहायता करनेवाले गृध्रराज को भी बचा नहीं पाए जिसने साध्वी सीता को बचाने का भरसक प्रयास किया। एकदम अकेले, संकीर्ण गली में लेटे हुए गृध्रराज के पास बैठकर राम निःसहाय स्वर में इस दुःखद घटना के बारे में विस्तार से जानने के लिए कई प्रश्न पूछते हैं—सीता ने क्या कहा, यह सब कैसे हुआ आदि आदि। जटायु जब तक उनका स्वर साथ देता है तब तक सब कुछ बताते हैं और उनको सांत्वना देते हुए कहते हैं कि जिस क्षण यह घटना घटी है उसको 'विंद' नाम का मुहूर्त कहते हैं और इस मुहूर्त में खोई हुई संपत्ति अंततः उसके स्वामी के पास वापस पहुँच जाती है। अपने शरीर में बची सारी शक्ति को समेटकर जटायु रावण का नाम बताकर उसके बारे में जो कुछ बताया जा सकता है, सब कुछ प्राण-त्याग के समय तक बताते जाते हैं।

राम जटायु की अंत्येष्टि आदर-सत्कार के साथ स्वयं करते है और दाह-संस्कार करते समय प्रार्थना करते हैं कि भू दान आदि यज्ञों के अनुष्ठान से महात्मा लोग जो लोक प्राप्त करते हैं, उन्हीं लोकों को जटायु प्राप्त करें। राम जो काम अपने पूज्य पिता के लिए नहीं कर सके, वह काम अब पूतात्मा जटायु को पूजनीय और मान्य समझकर कर रहे हैं। सारी राम कथा में केवल दो ही व्यक्तियों ने सीता-राम के लिए प्राण-त्याग किया था—राजा दशरथ और गृध्र राज जटायु। जटायु का त्याग मानवीय दृष्टिकोण से दशरथ के शोचनीय निधन से भी अधिक मर्मस्पर्शी हैं। दोनों करुणापूर्ण घटनाएं हैं, किंतु दूसरी घटना राम के हृदय के अंतरतम स्तर को विचलित कर देती है क्योंकि

यह प्रसंग राम को बहुत पुरानी बातों की याद दिलाता है जो दुर्भाग्य से उनके जीवन में एक के बाद एक घटती चली आ रही हैं। दुर्भाग्य की ये घटनाएं, उन्हीं के शब्दों में, ज्वाला को भी जलाने वाले दाहक प्रसंग हैं (दहेदपिहि पावकम्)। राम का नाम ले लेकर प्राण छोड़ते समय राजा दशरथ को राम ने देखा नहीं था, किंतु आखिरी सांस तक सीतायन सुनाते हुए राम को सांत्वना देकर धीरे धीरे शरीर-यात्रा समाप्त करनेवाले जटायु को अब वे अपनी आंखों के सामने देख रहे हैं—मरते हुए भी मरण-यातना से मुक्त, जीवन्मुक्त जटायु को। जटायु ने सीता के लिए अपने प्राण दे दिए जबकि दशरथ की मृत्यु राम के वियोग से हुई।

परंतु दशरथ की व्यथा जटायु के निधन से अधिक हृदय-विदारक है क्योंकि जटायु को कम से कम इस बात का संतोष था कि वे राम को सीता की जानकारी दे सके ताकि राम सीता को पा सकें। दशरथ की आंखों से राम की अंतिम रूपरेखा जब ओझल हो जाती हैं तो वे वस्तुतः टूटकर गिर पड़ते हैं। वे कौसल्या से कहते भी हैं कि उनकी दृष्टि राम के साथ साथ चली गई और फिर कभी वापस नहीं आएगी। उनकी व्यथा इतनी गहरी थी कि उसे वे स्वयं समझ नहीं पा रहे थे। सत्य क्या है, असत्य क्या है—इसको वे पहचान नहीं पा रहे थे क्योंकि कैकेयी ने अपनी शैतानी से इन तत्वों की परिभाषाएं ही बदल दी हैं। उनका विद्रोह उनकी निजी विवशता और क्षुद्र स्वार्थ के विरूद्ध था जिसके कारण सत्य और धर्म जैसे बुनियादी मानव मूल्यों के लिए सर्वात्मना समर्पित सुसंस्कृत परिवार में धर्मसंकट उठ खड़ा है। इन दोनों मूल्यों के बीच भयंकर-संघर्ष उनके मन को झकझोरता है। वे अपने ही सत्य को नकार भी नहीं पा रहे हैं और न अपने धर्म का निर्भीकता से पालन कर पा रहे हैं। इसी अंतर्द्वंद्व ने उनके दयनीय अवसान को घटित कर दिया है। किंतु उनके दोनों उदारमना पुत्रों ने (राम और भरत) मानवता में मानव-जाति के विश्वास को पुनः प्रतिष्ठित कर दिया और सत्य, धर्म, प्रेम, दया, कर्त्तव्यपरायणता, स्वार्थजयी सेवा भावना जैसे सनातन जीवन-मूल्यों की संजीवनी शक्ति को पुनः स्थापित किया।

वाल्मीकि के पात्रों के चरित्र-चित्रण की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि मानव-जाति की प्रतिष्ठा तभी उच्च शिखर पर पहुंच पाती है जब मानव-मूल्य खतरे में पड़ जाते हैं। देखने में यह कुछ अटपटा अवश्य लगता है। परंतु समस्त जीवन-जगत् के अस्तित्व (होना) और भव्यता (बनना) की आधारशिला यही है। इसी सनातन सत्य से जीवधारियों के निरंतर संघर्ष और उनकी जिजीविषा (जीने की लालसा) को बल और संबल प्राप्त होते रहते हैं। वाल्मीकि अपनी कालजयी कृति के लगभग सभी पात्रों के माध्यम से इसी बात को रेखांकित करना चाहते हैं।

6

कलात्मक कर-स्पर्श

वाल्मीकि की कलात्मक श्रेष्ठता उनकी अनुभूति की सचाई और अभिव्यक्ति की सरलता में समाविष्ट है। उन के शब्दों में ऊष्मा है, संवेग में संतुलन है और आख्यान में सहज समरसता है। वे अपनी ओर से कम कहते हैं और अपने पात्रों से अधिक कहलवाते हैं। मानव-स्वभाव में उनकी सात्विक अंतर्दृष्टि है और अपने पात्रों के चाल-चलन और आचार विचारों को संसाधित कर प्रस्तुत करने का अद्भुत कौशल है। सब से बढ़कर भाषा की गतिशीलता के वे प्रवाचक हैं। कभी-कभी उनका मौन मुखरित वाणी से भी अधिक आकर्षक लगता है और उनका वाग्-विलास अन्य सभी हास-विलासों को मौन बना देता है। सारांश यह है कि प्रवक्ता की प्रजागर-दृष्टि से संपन्न महाकवि के रूप में उनकी सफलता का रहस्य उनकी गहरी साधना (तपस्या) और सात्विक अध्यवसायिता (स्वाध्याय) में निहित है।

रामायण की कथा-वस्तु अत्यंत सरल, संक्षिप्त और सीधी सादी है। परंतु वाल्मीकि ने उसे जो कलात्मक स्पर्श दिया है और हृदय की जिस अभिव्यंजना से रंजित किया है, उससे विश्व की मन-मोहक आख्यायिकाओं में से अन्यतम बन गई है। विभिन्न घटनाओं में पूर्वापर संबंध जोड़कर उनमें कलात्मक सौष्ठव लाने में उन्होंने औचित्य और समतुल्यता की परिमार्जित रुचि का परिचय दिया है। इसीलिए उनकी कथा-कथन की शैली में एक अंत: सत्व आकर्षण दिखाई देता है। इसीलिए उनके कृतित्व को 'मधुरं मधुराक्षरम्' कहकर सराहा जाता है।

कथा का आरंभ अयोध्या के आपात मधुर वर्णन से होता है और उसका उपसंहार राम के चिर प्रतीक्षित राजतिलक समारोह के साथ होता है जो कि राम के अयोध्या लौटने पर संपन्न होता है। पहले चार सर्ग कथावस्तु की पूर्व पीठिका प्रस्तुत करते हैं और उत्तर कांड परिशिष्ट या अनुबंध के रूप में जोड़ा जाता है। कहीं कहीं कुछ प्रक्षिप्त अंश भी देखने को मिलते हैं। वाल्मीकि के काव्य-मानस से परिचित कोई भी प्रबुद्ध पाठक इनको पहचान सकता है। वाल्मीकि रामायण पर आधारित अनेक राम काव्य बाद में प्रचलित हुए। फिर भी आदि कवि की आद्य कृति की प्रासंगिता, प्रतिष्ठा और प्रामाणिकता ज्यों ज्यों की त्यों बनी रही है। जो भी नवीन उद्भावनाएं की गई, उनसे मूल की महिमा और मान्यता में वृद्धि ही हुई है।

समूची कथा में लगभग सौ पात्र हैं और प्रत्येक पात्र का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व स्पष्ट दिखाई देता है। कोई भी दो पात्र एक जैसे नहीं हैं। गौण से गौण पात्रों को भी बड़ी सावधानी के साथ प्रस्तुत किया गया है। वाल्मीकि ने कुछ पात्रों को जिस रुप में प्रस्तुत किया है, उसके पीछे उनका उद्देश्य और इस रूप-कल्पना भी सार्थकता परवर्ती रामकाव्यों के प्रणेता ठीक ठीक समझ नहीं पाए। उदाहरण के लिए, वाल्मीकि के अनुसार अहल्या पत्थर बनकर पड़ी नहीं रही और न राम ने उस पत्थर पर अपने पैर रखे। शाप का विधान और शाप-विमोचन का प्रकार कुछ दूसरा ही था। महर्षि गौतम का दिया हुआ शाप केवल इतना ही था कि जब तक राम के दर्शन नहीं होंगे तब तक वह बाह्य जगत के लिए अगोचर रहेगी। राम के दर्शन मात्र से और उनकी प्रेमपूर्ण वाणी सुनते ही अहल्या को अपना निजी स्वरुप फिर से प्राप्त हो गया। इसी प्रकार लक्ष्मण ने पंचवटी मे सीता को अकेली छोड़कर जाते समय कोई ऐसी रेखा नहीं खींची थी जिसके आगे बढ़ने से सीता को निवारित किया गया। 'लक्ष्मण रेखा' के रूप में परवर्ती रामकथा परंपरा में प्रख्यात इस रेखा का वाल्मीकि में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। लेकिन समय की गति के साथ यह रेखा इतनी लोकप्रिय हो गई कि इसको अब मिटाना कठिन है। सीता का अपहरण वाल्मीकि का रावण उनके केश पकड़कर और उनके शरीर को अपनी बांहों से उठाकर करता है। किन्तु परवर्ती राम-काव्य के प्रणेताओं के लिए यह उचित नहीं लगा, इसलिए उन्होंने इसका अलग-अलग प्रकार से वर्णन किया है। इसी प्रकार अग्नि परीक्षा से पहले राम सीता से जो परुष वचन कहते हैं, उनको भी परवर्ती कथाकार पचा नहीं सके, इसीलिए उन्होंने इस प्रसंग को दूसरे ढंग से प्रस्तुत किया। रावण का संहार अंत में राम ने कैसे किया, इसके भी अनेक प्रकार के वर्णन मिलते हैं। यह सब होते हुए भी, वाल्मीकि अपनी 'रामायण' के इस महान् इतिवृत्त को अभिकल्पित, प्रतिपादित और आख्यायित करने की कलात्मक परियोजना में सर्वोपरि माने जाते हैं। इस सार्वकालिक और सार्वजनीन महाकाव्य का वास्तविक महत्व साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक दृष्टि से समझने के लिए मूल रूप में रामायण का अध्ययन करना आवश्यक है।

कथा-कथन एक कौशल है जिसको व्याख्यायित करने के लिए वाल्मीकि दो ऋषियों का कथा शिल्प हमारे सामने नमूने के रूप में प्रस्तुत करते हैं। ये हैं—विश्वामित्र ओर शतानंद। विश्वामित्र दोनों राजकुमारों को अपने आश्रम ले जाते समय रास्ते में कई कहानियां सुनाते हैं। जब ये दोनों राजकुमार मिथिला पहुंचते हैं तो महाराज जनक के राज पुरोहित शतानंद विश्वामित्र का वृत्तांत राजकुमारों को सुनाते हैं। ये दोनों ऋषि जब कहानी सुनाने लगते हैं तो राजकुमारों का मन कथावस्तु और कथाशिल्प में इतना रम जाता है कि उस रमणीयता को छोड़कर उनके मन में और कोई अनुभूति प्रवेश नहीं कर पाती। रामायण के विभिन्न प्रसंगों का वर्णन करते समय वाल्मीकि ने भी इसी कथाशिल्प को अपनाया है।

रामायण का प्रथम रोमांचक प्रसंग राम का अप्रत्याशित वनवास है। घटनाक्रम की दिशा और दशा जब एक छोर से दूसरे छोर की ओर अचानक मुड़ने लगती है तो इस आमूल परिवर्तन से जुड़े हुए विभिन्न पात्रों की प्रतिक्रिया का सजग निरूपण करने में कथाशिल्पी के सामने कई समस्याएं आती हैं। सबसे अधिक प्रभावित पात्र दशरथ हैं जो कैकेयी के निष्ठुर प्रहार के पहले और सीधे शिकार बन गए थे। वे निःसहाय थे क्योंकि न तो कैकेयी उनकी बात मानने को तैयार थी और न राम अपने कर्तव्य से समझौता करने को। इन दोनों में से किसी ने उनको कोई राहत नहीं दी। यदि कैकेयी अपनी मांग वापस लेती या राम राज्य पर अपने अधिकार पर जोर देकर कुछ कह देते, जैसा कि राजा दशरथ ने स्वयं सुझाया था, उनकी बात बन जाती और वे प्रसन्न हो जाते। किंतु दोनों में से कोई भी मार्ग नहीं खु ाा क्योंकि एक ओर कैकेयी अपनी स्वार्थ सिद्धि पर डटी रही और दूसरी ओर राम अपनी सात्विक निःस्वार्थता पर अटल रहे। अंदर के इस मानस-मंथन को और अधिक भयावह बनानेवाली उत्कट व्यग्रता राजमहल से बाहर बढ़ती जा रही थी। सभी राजप्रमुख राजमहल से बाहर महाराज दशरथ की सातुर प्रतीक्षा कर रहे थे क्योंकि राजतिलक का मुहूर्त आ चुका है। सारी अयोध्या राम के राजतिलक के आनंद महोत्सव की प्रतीक्षा कर रही थी। इस विषम परिस्थिति के कारण सभी संबंद्ध व्यक्तियों के मन में भीषण द्वंद्व चल रहा था। राजमहल के भीतर जो हो रहा था, उससे बाहर की मनोदशा बिलकुल मेल नहीं खा रही थी। वास्तव में पिताजी के यहाँ से बुलावा पाकर जब राम राजमहल की ओर चल पड़ते हैं तो रास्ते में झुंड के झुंड इकट्ठे नागरिक राम का रास्ता ही रोककर उनके प्रसन्न मुख-मंडल की एक झलक पाकर पुलक उठते हैं। यदि राम की दृष्टि उन पर पड़ती है तो अपने को धन्य समझकर फूले नहीं समाते। विधि की विडंबना से उत्पन्न इस विचित्र परिस्थिति का वर्णन करने में वाल्मीकि अपनी कल्पना और सृजनशीलता का अद्भुत परिचय देते हैं। इससे राम, दशरथ, कौशल्या, सीता और लक्ष्मण जैसे प्रमुख पात्रों का व्यक्ति वैचित्रय भी कुशलता से अभिव्यक्त होता है।

राम को वन जाने से रूकवाने के अंतिम प्रयास में दशरथ कहते हैं:—

अद्यत्विदानीं रजनीं पुत्र मा गच्छ सर्वथा।
एकाहं दर्शनेनापि साधु तावच्चराम्यहम्।

(बेटा, आज तो वन जाने की बात बिल्कुल छोड़ दो। एक दिन ही सही, तुमको अपने पास देखकर मैं अपने को जीने और चलने लायक पाऊँगा।)

असल में दशरथ चाहते हैं कि राम वनवास की बात ही छोड़ दें—सदा के लिए। क्रूर कर्मा कैकेयी ने यह सारा झमेला खड़ा कर दिया है, यह बात उनको बार-बार खलने लगती है। राम से वे यहाँ तक कह देते हैं अपनी पत्नी के कुतंत्र में आकर यह गलत काम करने के अपराध में मुझे कैदी बनाकर तुम अपने स्वत्व के आधार पर राजसिंहासन पर बैठ जाओ। अपने पिताजी के मानसिक विक्षोभ को समझकर, जो कि अपने ढंग

से न्याय सम्मत तो है ही, राम कहते हैं :—

प्राप्स्यामि यानद्य गुणान् को मे श्वस्तान् प्रदास्यति ।
अपक्रमणमेवातः सर्वकामैरहं-वृणे ।।

(आज वनवास जाने से मुझे जो सत्कर्म का फल मिलेगा, उसे कल मुझे कौन दे सकता है, पिताजी ? इसलिए अपनी सभी सुख सुविधाओं और मनोकामनाओं को छोड़कर मैं सही मार्ग पर आज ही अपना उपक्रम आरंभ करना चाहूंगा।)

दूसरे शब्दों में, राम इस बात को स्पष्ट करना चाहते हैं कि कर्तव्य कर्म में विलंब होने से कर्तव्य की भावना ही निरस्त हो जाती है। किन्तु राम के मन में पिताजी के प्रति अनादर की भावना बिल्कुल नहीं है। अत्यंत गौरव के साथ वे अपने पिताजी से अनुरोध करते हैं कि इस क्षणिक दुःख से वे अपने को विक्षुब्ध न बनाएं। अपनी ओर से राम आश्वासन देते हैं कि इससे उनको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा और वनवास की अवधि आराम से कटेगी। पिताजी की आँखों से निकल रही अश्रुधारा को वे रूकवाने को कहते हैं और दुःख सहने का बार बार अनुरोध करते हैं। अंत में अपने सत्यसंध पिता से अनुरोध करते हैं कि कैकेयी को दिए गए वचन पर डटे रहे और अपने पुत्र की सुख सुविधा के लिए सत्य से समझौता न करें। अपनी बात समेटते हुए राम एक आर्य-वचन का उदाहरण देते हुए कहते हैं—"पिताहि दैवतं तात देवतानामपि स्मृतम्" (स्मृतियां कहती हैं कि पिता तो देवताओं के लिए भी देवतुल्य हैं।)

यह सब होते हुए भी दशरथ अपने मन का समाधान नहीं करा पाते। सुमंत्र और वशिष्ठ भी दशरथ के सामने ही कैकेयी की भर्त्सना करते हैं और कठोर वचनों से उनकी निंदा करते हैं। फिर भी कैकेयी का मन पत्थर की तरह कर्कश रहता है। राम, सीता और लक्ष्मण के लिए वह वल्कल वसन लाकर उन्हें पहनने को कहती हैं। पारस्परिक वाद-विवाद, वैषम्य और संघर्ष के इस संवेदनशील प्रसंग का वर्णन करते समय वाल्मीकि प्रवर्तन, आवर्तन, प्रत्यावर्तन आदि अनेक मनोवृत्तियों का जीता-जागत चित्र प्रस्तुत कर आख्यान कला की पराकाष्ठा पर पहुंच जाते हैं। विभिन्न पात्रों के बीच इस अवसर पर जो वाद, प्रतिवाद और संवाद होता है, वह इतना संयत और संतुलित है कि इनमें से कोई भी पात्र किसी दूसरे पात्र की कोई भी बात जीवन में कभी नहीं भूल सकता और वाल्मीकि के सभी पाठक तो सबकी बातें बराबर याद रखेंगे ही।

इस अवसर पर भरत की अनुपस्थिति सबको बार-बार उनका स्मरण कराती है। यदि वे इस अवसर पर अयोध्या में होते तो यह सब नहीं होता, राजमर्यादा और पारिवारिक प्रतिष्ठा को इस प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती। किंतु विधि की विडंबना है कि दशरथ ने सब कुछ जानते हुए भी, न मालूम क्यों, भरत की अनुपस्थिति में ही और वह भी बड़ी जल्दबाजी में यह सारी योजना बनाई। उनके मन में कुछ था और विधि के मन में कुछ और था। भरत के अयोध्या लौट आने तक राम को रूकवाने

के लिए कैकेयी भी तैयार नहीं थी। असल में राम तो भरत के आने तक रूकने के लिए तैयार थे और भरत का राजतिलक अपने सामने करवाकर फिर वे वनवास जाना चाहते थे। परंतु जब राम का यह प्रस्ताव कैकेयी को अच्छा नहीं लगा तो तुरंत राम ने निर्णय किया कि उनकी इच्छा के अनुसार तत्काल वे वनवास के लिए प्रस्थान करेंगे। केवल माँ कौशल्या से आशीर्वाद लेने भर का समय उन्होंने कैकेयी से मांगा था। इस नीरव गतिशीलता के पीछे जो मनोभूमि है, उसको वाल्मीकि अपनी सांकेतिक भाषा में स्पष्ट कर देते हैं।

राजा, राज्य और राजपरिवार तीनों का जब सबसे बड़ा अनर्थ हो जाता है और भरत अयोध्या लौट आते हैं तो राम के वनवास से भी अधिक विस्फोटक संघर्ष दूसरे संकट का कारण बनता है। वाल्मीकि इस परिस्थिति को सृजनशील कल्पना के बल पर संभालते हैं। भरत को अयोध्या पहुंचने तक, इस बात का बिल्कुल पता नहीं था कि वहाँ पर इस बीच में क्या क्या हुआ। संदेशवाहकों को इस संबंध में कुछ भी कहने की अनुमति नहीं थी। भारत को केवल इतना संदेश भेजा गया कि वे तत्काल अयोध्या के लिए प्रस्थान करें और एक शुभ समय उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। किंतु भरत की अंतश्चेतना में उनको इस बात का आभास हो रहा था कि कहीं कुछ अवांछनीय घटना घटी हैं। अंततः अयोध्या पहुंचने पर कैकेयी एक एक करके दुर्भर समाचार की सारी बातें कई किश्तों में सुनाती है तो भरत का यह अनुमान सही निकलता है।

पिताजी का आकस्मिक निधन और राम सीता और लक्ष्मण के वनवास की बात सुनकर भरत तन-मन से हताश होकर जमीन पर गिर पड़ते हैं। उधर कैकेयी उनसे यह अपेक्षा कर रही थी कि यह अपूर्व अवसर पाकर उनका बेटा उनके आनंद में सहभागी बनेगा। माता और पुत्र के बीच चिंतन-स्तर का जो अंतर है उसको वाल्मीकि ने इतने सुस्पष्ट और मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है कि भावात्मक संतुलन सत्य और धर्म के बीच समन्वय को भी सुनिश्चित कर देता है। सत्य का अंधा अनुसरण कैकेयी ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए किया है तो दशरथ ने अपनी आखिरी सांस तक धर्म का प्रबल समर्थन किया है जिसको आगे बढ़ाने का दृढ़ संकल्प उनके सुयोग्य पुत्र भरत ने अब कर लिया है। कैकेयी की अपेक्षाओं के बिलकुल विपरीत, भरत उनकी कूट योजना का एकदम खंडन कर उनसे अपना सारा संबंध उसी प्रकार त्याग देते हैं जिस प्रकार उन्होंने अपने पति, परिवार, समाज, राज्य और मानव जाति से अपना रिश्ता तोड़ दिया है। क्रोध के आवेश में (जैसा कि भरत सरीखे व्यक्ति के लिए उस दशा में स्वाभाविक है, प्रकृत्या चाहे वे कितने ही संतुलित हो) भरत अपनी माँ को आगे चलकर उनसे बात करने के लिए मना कर देते हैं और न स्वयं उनसे बात करेंगे (न ते ऽहं अभिभाष्योस्मि)। अब माता-पुत्र के बीच संवाद-सूत्र कट जाता है। स्पष्ट शब्दों गें सबके सामने भरत इस बात की घोषणा कर देते हैं कि वे अपनी मां की कुटिल योजना को कार्यान्वित होने नहीं देंगे और इसके विपरीत वे राम को अयोध्या वापस लाकर उनको

सिंहासन पर बिठाएंगे। वे कहते हैं कि यदि आवश्यक हो तो राम के स्थान पर वे स्वयं वनवास स्वीकार करेंगे और राम से राज-काज चलाने का अनुरोध करेंगे। राजमहल में या महल से बाहर किसी ने सोचा नहीं होगा कि भरत अपनी मां के विरूद्ध इतनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त् करेंगे। किंतु राम को मालूम था कि ऐसी बात हो सकती है। संभवत: दशरथ को भी इस प्रकार की संभावना की आशंका थी। यही कारण था कि दशरथ राम को एक दिन के लिए रूकवाना चाहते थे और इसी कारण राम भी अविलंब अयोध्या छोड़ना चाहते थे। किंतु जहाँ तक दूसरे लोगों का प्रश्न है, उनमें से अत्यंत आत्मीय लोगों ने भी भरत को शंका की दृष्टि से देखा था और उनके आशय के सबंध में सीधे सवाल भी करने लगे।

भरत के लिए इन विचित्र प्रश्नों का उत्तर देना और अनेक प्रकार की शंकाओं का समाधान करना एक कष्टकर अनुभव और दारूण परीक्षण था जबकि वास्तविकता यह है कि राम से मिलकर उनको अयोध्या लौट आने के लिए राज़ी करने वे चित्रकूट जा रहे थे।

आश्चर्य इस बात का है कि संशय-शरों की यह वर्षा भोले-भाले और निर्मल चित्त भरत पर सबसे पहले राममाता कौशल्या की ओर से निकली। उनका आक्रमण एकदम सीधा और निष्ठुर था। परंतु भरत ने इस परीक्षा का सामना बड़ी विनम्रता, आद्रर और सम्मान के साथ किया क्योंकि एक मां के दिल का दर्द वे आसानी से समझ सके। कौशल्या भी तुरंत अपनी जल्दबाज़ी के लिए पछताने लगी और भरत को गले लगा लिया और वात्सल्य के अश्रुकणों से उनको अभिसिक्त किया। राम के आनयन (वापस लाने) के अभियान में भरत को इस प्रकार का स्पष्टीकरण चित्तशुद्धि और सरल हृदय से वशिष्ट, भरद्वाज और गुह को भी देना पड़ा। भरत के पीछे विशाल सेना को देखकर उनके भाई लक्ष्मण भी शंकालु हो जाते हैं। परंतु राम उनको एक क्षण में शांत कर देते हैं—केवल इतना कहकर कि अगर तुम चाहो तो मैं भरत को कहकर तुमको राज्य दिला दूंगा।

चित्रकूट का शिखर सम्मेलन जहाँ पर राम और भरत अपने पिता के सदाशय और उनका नाम लेकर कैकेयी के दिए आदेशों के औचित्य पर विचार-विनिमय कर लेते हैं एक महत्तम काव्य खंड है जिसकी तुलना विश्व साहित्य के किसी भी उत्कृष्ट महाकाव्य के समतुल्य प्रसंग से की जा सकती है। अप्रतिम शालीनता के साथ महाकवि वाल्मीकि द्वारा प्रस्तुत यह प्रसंग उनकी काव्य-मर्यादा और कलात्मक आदर्श को महोन्नत शिखर पर प्रतिष्ठित करता है। सांस्कृतिक संवाद के कुशल संयोजक के रुप में वाल्मीकि इस प्रसंग में निर्वचनीय मौन को अनिर्वचनीय वाग्मिता का रूप देकर विश्व साहित्य में वाक्-संस्कृति का एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं। पहले दिन संध्या के समय जब राम और भरत संस्कृत समाज के बीच बैठते हैं तब प्रत्येक व्यक्ति दोनों भाइयों का संवाद सुनने के लिए उत्कंठा के साथ प्रतीक्षा करते हैं। भरत अपना प्रफुल्ल मुख मंडल राम की

ओर कर उन्हीं के समीप बैठते हैं। पर उनके ओठ बंद हैं। मौन अपनी नीरवता का भंग करने का प्रयास तो करता है, पर सफल नहीं हो पाता। इस प्रकार सारी रात सबके सोचते सोचते ही बीत जाती है (शोचतामेव रजनी दु:खेन व्यत्यवर्तत)।

अगले दिन सबेरे संवाद आरंभ होता है। वह दिन भरत का था (भारतीय दिवस) और भरत की भाषा (भारतीय भाषा) राम की समझ में आती है। दोनों भाइयों के बीच जो भी वाद-विवाद होता है उसकी सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह सारा का सारा अपने स्वत्व के समर्थन को लेकर नहीं हैं, उसके विपरीत सत्य और धर्म के प्रति निष्ठा की भावना से अपने अपने कर्तव्य निभाने को लेकर है। दोनों भाई एक दूसरे की बात का समर्थन करते हैं, पर अंत में दोनों के बीच का मतभेद ज्यों का त्यों बना रहता है। सहमति केवल इसी बात पर है कि जो भी हो, सत्य और धर्म दोनों की अपेक्षाएं पूरी होनी चाहिए। अंतत: राम की स्वर्ण पादुकाएं, जिनको भरत अपने भाई राम के प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार कर उनके वनवास से लौट आने तक राज-काज चलाने के लिए सहमत होते हैं, इस मानस-मंथन का सर्वमान्य समाधान प्रस्तुत करती हैं। यह संघर्ष दो स्वार्थ रहित भाव भूमिकाओं के बीच का हैं और दोनों की स्थापना अपने अपने स्तर पर अंत तक प्रबल बनी रहती है और उसके बाद भी यह समाधान तब तक दोनों के लिए मान्य बना रहता है जब तक राम चौदह वर्ष के वनवास के बाद अयोध्या न लौटें।

वाल्मीकि की काव्य-सुषमा उनकी कृति 'रामायण' के पंचम स्वर 'सुंदर कांड' में अपनी उत्कृष्टतम स्थिति पर पहुंचती है। यह काव्य-खण्ड साहित्यिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक—तीनों दृष्टिकोणों से वाल्मीकि की कारयित्री प्रतिभा की प्रांजल से प्रांजल अभिव्यंजना से अलंकृत उत्तम कला-खण्ड माना जाता है। क्रूर राक्षसों से आवासित और परिरक्षित दुर्गम्य और दुर्ज्ञेय भू खंड में भूमाता की पुत्री जानकी का हनुमान द्वारा सफलतापूर्वक संपन्न अन्वेषण वास्तव में सौंदर्य में सत्य की और सत्य में सौंदर्य की गहन गवेषणा है। सीता जिस सौंदर्य की प्रतिमूर्ति है, वह केवल शारीरिक सौंदर्य नहीं है, बल्कि आत्मा का सौंदर्य उसमें ध्वन्यात्मक प्रतीक के रूप में समाविष्ट है। इस सौंदर्य का वैभव समझाने के लिए वाल्मीकि सौंदर्य राशि तथा सुंदर सारिकाओं के बीच का विभेदक अंतर भी प्रस्तुत करते हैं। सीता की खोज करते समय हनुमान को अनिवार्यत: रावण के अंत:पुर की चित्र-विचित्र सुंदरियों की अश्लील अंग भंगिमाओं को देखना पड़ता है, क्योंकि उनको उसी मार्ग से गुजरना पड़ता है। सीता के एकांत सौंदर्य की आध्यात्मिक आभा को सबसे अलग दिखाने के लिए वाल्मीकि शयनकक्ष के स्वप्न-सौंदर्य का भी विस्तार से वर्णन करते हैं। अपने अन्वेषण-कार्य में आद्योपांत हनुमान जिस अद्भुत संयम और संतुलन को बनाये रखते हैं उसको बड़ी बारीकी से महाकवि आलोकित करते हैं।

सारे अंत:पुर की सर्वोत्तम सुंदरी मंदोदरी को देखकर गौरी के समान स्वर्णिम आभा से सुशोभित उनकी आकृति से प्रभावित हनुमान उन्हीं को सीता समझकर क्षणभर के

लिए बड़ी प्रसन्नता से उछल पड़ते हैं। किन्तु कुछ ही समय में अपने विवेक के विकार पर पछताकर अपनी गलती समझ जाते हैं। वे अपने आपको समझाते हैं कि राम की पतिप्राणा साध्वी सीता इस प्रकार इस अंत:पुर में आराम से सो नहीं सकती। उसके बाद तुरंत वे अपने अन्वेषण को जारी रखते आगे बढ़ते हैं—वास्तविक लक्ष्य की सिद्धि के लिए। वे अपने मन में जानकी की एक मनोहर रूप कल्पना कर लेते हैं—उन्नत नासिका, उज्ज्वल मंदहास, निर्मल दंत-पंक्ति, अक्षत शरीर, उत्फुल्ल नयन और प्रसन्न मुखमंडल। इसी लावण्य रेखा की खोज में वे आगे बढ़ते हैं और उस दर्शनीय का दर्शन करने में कृतकृत्य भी हो जाते हैं।

जहाँ पर यह परम सुंदरी कहीं से कुछ आशा की किरण या सांत्वना के स्वर की सातुर प्रतीक्षा में बैठी हुई है, उस स्थान तक हनुमान कैसे पहुंच पाए, इसका वर्णन वाल्मीकि बड़ी कुशलता से करते हैं। एक एक कदम आगे बढ़ाते हुए, एक एक वन, उपवन, लता कुंज, निकुंज पार करते हुए बीच बीच में झुरमुट के पीछे छिप-छिपकर इधर-उधर देखते हुए धीरे-धीरे एक जलाशय के पास पहुंचते हैं जिस में उषा की पहली किरणें प्रतिबिंबित हैं। उनको लगता है कि मैथिली जहाँ कहीं भी हों, प्रभात के समय ऐसे रमणीय स्थान पर अवश्य आएँगी। अंत में अशोक वन में पेड़ की छाया में सीता की आभा दिखाई देती है। सीता के संदर्शन मात्र से हनुमान पुलकित हो जाते हैं और उनका मन तत्काल राम के पास पहुंच जाता है। आनंद और आह्लाद को जगानेवाली सीता की मंगलमय मूर्ति को शब्दों में चित्रित करने के लिए रस शिल्पी वाल्मीकि जो उपमाएं देते हैं, उनकी समता करनेवाला कोई भी काव्य खंड प्राचीन साहित्य में भी दुर्लभ है। कुछ पंक्तियां नमूने के लिए :—

सीतां पद्मन्द्मपलाशाक्षीं मन्मथस्य रतिं यथा।
इच्छां सर्वस्य जगत: पूर्णचंद्रप्रभामिव ॥
भूमौ सुतनुमासीनां नियतामिव तापसीम्।
नि:श्वास बहुलांभीरुं भुजगेंद्रवधूमिव ॥
शोकजालेन महता विततेन न राजतीम्।
संसक्तां धूमजालेन शिखामिव विभावसो: ॥
तां स्मृतीमिव संदिग्धं ऋद्धिं निपतितामिव।
विहतामिव च श्रद्धां आशां प्रतिहतामिव ॥
सोपसर्गां यथा सिद्धिं बुद्धिं सकलुसामिव।
अभूतेनापवादेन कीर्तिं निपतितामिव ॥
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव ॥
दु:खेन बुबुधे सीतां हनूमाननलंकृताम्।
संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थांतरंगताम् ॥

(हनुमान ने सीता को देखकर अनुमान से उनको उसी रूप में समझा क्योंकि उनकी आंखें कमल और पलाश की भांति विराजमान हैं, वह देखने में मन्मथ की पत्नी रति

के समान हैं, पूर्णिमा की चांदनी की तरह वह समस्त संसार को अच्छी लगने वाली हैं, संयम से तपस्या का आचरण करनेवाली सुंदर तापसी की तरह वह जमीन पर बैठी हुई हैं, नागराज की पत्नी की तरह भीरुता के कारण बार-बार सांस छोड़ रखी है, किसी महान् शोक से व्याकुल होने के कारण यथेष्ट शोभा नहीं पा रही है, धुएँ से ढकी हुई अग्निशिखा के समान है। संशय से आच्छन्न स्मृति, धराशायी ऋद्धि, टूटी हुई श्रद्धा, प्रतिहत आशा, बाधाओं से अवरुद्ध सिद्धि, प्रदूषित बुद्धि, मिथ्या कलंक से भ्रष्ट हुई कीर्ति और विभिन्न शाखाओं के समन्वय के अभाव में शिथिल पड़ी हुई विद्या के समान सीता को दयनीय दशा में देखकर हनुमान ने सोचा कि संस्कार से शून्य वाणी जिस प्रकार अपेक्षित अर्थ को छोड़कर अर्थांतर को प्राप्त होती है उसी प्रकार अस्थान में बैठी इस देवी को पहचानना कठिन है। फिर भी हनुमान ने बड़ी कठिनाई के साथ उनको सही पहचान लिया।)

जिस क्षण हनुमान सीता को देखकर उनको राम की योग्य पत्नी के रूप में पहचान पाते हैं उसी क्षण से हनुमान के मन में प्रस्फुटित चिंतन-धारा को वाल्मीकि की ऊर्जस्वित वाणी सक्षम अभिव्यंजना देती है। वाक्-संस्कृति के प्रथित प्रवक्ता वाल्मीकि अपनी कृति रामायण में, जहाँ भी अवसर मिलता है, इस संस्कृति की प्रसंगोचित व्याख्या करते हैं। उनके लगभग सभी पात्र-शूर्पणखा जैसी कम संस्कार-संपन्न पात्रों के समेत-अभिव्यक्ति की कला में कुशल हैं। प्रत्येक पात्र को उनकी वाक्-वैखरी (बात करने के ढंग) से पहचाना जा सकता है। कुछ पात्रों के विशिष्ट गुण को रेखांकित करने के लिए वाल्मीकि उनको कुछ सार्थक पदनाम या उपनाम देते हैं—जैसे 'सत्य पराक्रम' (राम), 'लक्ष्मिवर्द्धन' (लक्ष्मण), 'भ्रातृवत्सल' (भरत), 'सत्य संध' (दशरथ), 'मंत्र कोविद' (सुमंत्र), 'नित्यशंकित' अथवा 'विपुल ग्रीव' (सुग्रीव) तथा 'लोक रावण' (रावण)।

वाल्मीकि को कुछ शब्द और वाक्यांश विशेष प्रिय होते हैं और वाल्मीकि के कर-स्पर्श से इन शब्दों की अभिव्यंजना के नये आयाम बन जाते हैं। उदाहरण के लिए, 'प्रतिष्ठा' शब्द का प्रयोग रामायण के प्रेरणा-श्लोक और प्रथम कवि के प्रथम छंद के रूप में विख्यात 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती: समा: वाले श्लोक में मिलता है। इसी शब्द का प्रयोग (क्रिया के रूप में) बाद में सीता, राम और लक्ष्मण को गंगा के तट पर छोड़कर वृद्ध दंपति कौसल्या और दशरथ के पास लौट आने के बाद राम के तापस-जीवन की व्याख्या करते हुए सुमंत्र करते हैं। सुमंत्र कहते हैं—''इदं हि चरितं लोके प्रतिष्ठास्यति शाश्वतम्'' (यह इतिवृत्त संसार में सदा के लिए लोक-प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा)। इन दोनों प्रसंगों में प्रयुक्त 'प्रतिष्ठा' के प्रयोग को मिलाकर देखने से इसकी प्रतिष्ठा का पता चलता है। वाल्मीकि के शब्द-शिल्प का यह केवल एक नमूना है।

वाल्मीकि की भाषा सरल और सहज होने पर भी उसमें एक विशिष्ट गतिशीलता है जो शब्द और अर्थ को समेकित रूप से साथ ले चलती है। इससे अभिव्यक्ति की काव्यात्मकता और उससे निष्पन्न होनेवाली अनुभूति की आपात रमणीयता सामान्य से

सामान्य पाठक को हृदय को भी आकृष्ट कर लेती है। एक उदाहरण पर्याप्त है। जब हनुमान अपने साथियों को सीता के संदर्शन का सुखद समाचार सुनाते हैं तो सभी वानर-वीर तुरंत मधुवन पर आक्रमण कर अपना आनंदोत्सव मनाने लगते हैं। किष्किंधा का यह सबसे मनोरम उपवन है। इस उत्सव के वर्णन की कुछ पंक्तियां इस प्रकार चलती हैं :

ततश्चानुमता: सर्वे प्रहृष्टा काननौकस:।
मुदिताश्च ततस्ते च प्रनृत्यंति ततस्तत:॥
गायंति केचित् प्रणमंति केचित्।
पंतति केचित् प्रचरंति केचित्
प्लवंति केचित् प्रलपंति केचित्॥
परस्परं केचिदुपाश्रयंति
परस्परं केचिदतिब्रुवंति।
द्रुमाद् द्रुमं केचिदभिद्रवंति
क्षितौ नगाग्रान्निपतंति केचित्॥

(जैसे ही मधुवन में स्वेच्छा से मन सहलाने की अनुमति प्राप्त हो जाती है तो सभी वानर प्रकृत्या कानन-प्रेमी होने के कारण अपनी आंतरिक प्रसन्नता को प्रकट करते हुए अपने अपने स्थान पर खड़े होकर नाचना, कूदना, उठना, गिरना शुरू करते हैं। कोई गाने लगता है तो कोई ठहाके मारकर हंसने लगता है। कोई नाचने लगता है तो कोई हंसी मजाक में अपने साथी को नमस्कार करने लगता है। कोई पेड़ से नीचे गिर पड़ता है तो कोई नीचे ही नीचे स्वैर-विहार करने लगता है। कोई ऊपर ही ऊपर हवा में तैरने लगता है तो कोई उन्मत्त की भांति निरर्थक प्रलाप करने लगता है। कोई किसी दूसरे का सहारा लेकर चलने लगता है तो कोई किसी से अनावश्यक बातें बढ़ाने लगता है। कोई एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर छलांग मारने लगता हैं तो कोई पहाड़ के ऊपर से जमीन पर गिर पड़ता है।)

मानव-स्वभाव के अतिरिक्त प्राकृतिक सौंदर्य, भौगोलिक भव्यता और ऋतुचक्र की निरंतर गतिशीलता का वर्णन करने में भी वाल्मीकि अपनी रस सिद्धि और सिद्धहस्तता का परिचय देते हैं। गंगा नदी का वर्णन दो प्रसंगों में पाया जाता है—बाल कांड में जब विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को गंगा के अवतरण की कथा सुनाते हैं और फिर जब सीता, राम और लक्ष्मण वनवास के समय गंगा नदी को पार करते है। चित्रकूट पर्वत के परिसार का वर्णन भी चित्रांकन की संजीवता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। अनसूया सीता को विदा करते समय संध्या के परिवर्तनशील पर्यावरण तथा सूर्यास्त और निशारंभ का सारगर्भित वर्णन करती हैं और दंडक वन की दारुण भीषणता के प्रति सीता को सतर्क भी कर देती हैं। पंपा-सरोवर और उसके तट पर स्थित मातंगवन का जो वर्णन शबरी के प्रसंग में किया जाता है उसमें प्राकृतिक सौंदर्य के अतिरिक्त आर्ष महिमा और आध्यात्मिक गरिमा का पुट भी मिलता है। वाल्मीकि ने जिन ऋतुओं का वर्णन

किया है, उनमें से वर्षा और शरद् के वर्णन अत्यंत हृदयग्राही हैं क्योंकि इन वर्णनों में राम की मनोभूमिका भी प्रतिबिंबित है। राम और लक्ष्मण दोनों प्राय: खगोल के कुछ दृश्यों का सांकेतिक उल्लेख करते हैं। इन संकेतों का सही विश्लेषण किया जाए तो ज्योतिमंडल की गति-विधियों पर वाल्मीकि की विचारधारा का पता लगाया जा सकता है और यह बहुत ही रोचक अध्ययन होगा। उदाहरण के लिए राम तथा उनके तीनों भाइयों का विवाह उत्तराफल्गुनी नक्षत्र में संपन्न होता है। राजर्षि जनक के अनुसार जो स्वयं इस मुहूर्त का निर्णय करते हैं, यह नक्षत्र विवाह के लिए अत्यंत शुभप्रद होता है। इसी प्रकार राम की रण यात्रा 'हस्त' नक्षत्र के दिन आरंभ होती है और यह नक्षत्र विजय का संधायक माना जाता है।

लंका की ओर प्रस्थान करते समय मार्ग में लक्ष्मण आकाश की ओर देखते हैं और बिलकुल सामने विशाखा नक्षत्र की निरुपद्रव और निर्मल कांति को देखकर कहते हैं कि यह नक्षत्र इक्ष्वाकुवंश के लिए परम कल्याणकारी है। रामायण में इस प्रकार के अनेक संदर्भ हैं जिनका अपना महत्व है। लगता है कि परवर्ती रामकाव्यों ने इस संदर्भ में वाल्मीकि के नक्षत्र-दर्शन पर विशेष ध्यान नहीं दिया है।

सुंदर कांड में, चंद्रमा स्वयं एक पात्र बनकर आता है। जब हनुमान लंका में प्रवेश करते हैं तो प्राची के द्वार से पूर्ण चंद्र अपनी परिपूर्ण आभा से प्रवेश करते हैं। ऐसा लगता है कि अपरिचित स्थान पर अभी अभी पहुंचे हुए हनुमान का मार्ग दर्शन कर उनकी सहायता करने के लिए चंद्रमा को भेजा गया है। इस सहायता को वाल्मीकि 'साचिव्य' की संज्ञा देकर इस दैवी आयोग की ओर हल्का-सा संकेत करते हैं। चंद्रोदय का वर्णन जिस प्रकार वाल्मीकि प्रस्तुत करते हैं उससे वह केवल खगोलीय घटना न होकर उससे भी अधिक भावगर्भित प्रतीत होता है। वे कहते हैं कि पूर्णिमा की परिपूर्ण शोभा से प्रकट कलाधर की क्रांति से रात का अंधेरा तो तत्काल हट जाता है, पर साथ ही नरभक्षी राक्षसों की कुत्सित चेष्टाओं का मालिन्य भी धुल जाता है। इसके साथ साथ क्षणभंगुर सांसारिक विषय वासनाओं में संलग्न कामिनी-कामियों के मन में भी दिव्यालोक की दिविज तेजस्विता प्रविष्ट होकर उनके अंतरंग को पवित्र बनाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेम की प्रतिमूर्ति राम के पवित्र हृदय से एक सुखद समीर लंका में प्रवेश कर चुका है ताकि यह भूमि पावन बन जाए।

महाकाव्य की महती विचारधारा से मंडित इस प्रकार के प्रसंग रामायण में सर्वत्र मिलते हैं—लगभग सभी कांडों में। इन सभी प्रसंगों में वाल्मीकि की वाणी उनके महाकाव्य-दर्शन की समर्थ संवाहिका बनकर प्रत्यक्ष होती है। शब्द-सृष्टि और आर्ष दृष्टि के बीच अनायास घटित यह सुंदर सामंजस्य वाल्मीकि की सबसे बड़ी विशेषता है जो उनको महती अनुभूति और मंजुल अभिव्यंजना से युक्त काव्यर्षि बना देते है।

7

संदेश

किसी भी महाकवि के लिए माध्यम और संदेश दोनों समान रूप से महत्वपूर्ण हैं और वाल्मीकि ने दोनों के प्रति पूरा पूरा न्याय किया है। कला की कोई भी अभिव्यंजना अपने को तभी अधिक शक्तिशाली ढंग से अभिव्यक्त कर पाती है जब कलाकार इस प्रक्रिया से असंसक्त रहता है। इसी प्रकार वास्तविक वस्तु तत्व का संप्रेषण व्यापक स्तर पर तभी विस्तार प्राप्त करता है जब वह केवल चिंतन-प्रधान न होकर 'चित्रसूत' (कगीशण्ड) हो। वाल्मीकि के साथ बिलकुल यही हुआ। उन्होंने कभी सोचा नहीं होगा कि किसी निष्ठुर व्याध के निर्मम प्रहार से आहत क्रौंच मिथुन के वियोग से पीड़ित उनका सदय हृदय प्रेम और करुणा जैसे बुनियादी मानव मूल्यों को बढ़ावा देनेवाली कालजयी काव्य कृति का रूप धारण करेगा। किंतु उनको स्वयं आश्चर्य हुआ होगा कि इस कृति ने विश्व साहित्य के प्रशस्त काव्यों में से गौरवपूर्ण प्रस्थान किया है और उसका विश्वव्यापी संदेश सार्वकालिक और सार्वजनीन बन गया।

मानवता का निर्माण और संहार का परिहार रामायण की विषय-वस्तु से निकलने वाले दो प्रमुख तत्व हैं। इन दो बुनियादी मानव मूल्यों को अपने काव्य में प्रतिपादित करने के लिए वाल्मीकि को तमसा नदी की प्रसन्न और रमणीय जलधारा तथा क्रौंच-मिथुन के परम दारुणिक वियोग से प्रेरणा मिली थी। वाल्मीकि द्वारा प्रणीत इस महाकाव्य के मूल में ये ही दो घटनाएं आधार बनकर खड़ी होती हैं।

महाकाव्य की कलात्मक अभिव्यंजना में सर्वसमर्थ होने के कारण वाल्मीकि कभी भी उपदेशक या शिक्षक के रूप में अपनी बात नहीं कहते, बल्कि वे अपने पात्रों को अपना प्रवक्ता बना देते हैं। वे भी अपने आचरण, शब्द और विचारों के माध्यम से अपनी और अपने कवि की बात कह देते हैं। उनको भी आचरण का माध्यम ही अधिक अच्छा लगता है। इधर उधर कभी कभी कुछ सामान्य तथ्य और सैद्धांतिक सत्य का निरूपण पाया जाता है, परंतु वह घटनाक्रम से अपने आप उभरकर आते हैं। कुछ आदर्श पात्र हैं, जैसे राम, भरत, लक्ष्मण, सीता, सुमित्रा, सुमंत्र, गुह, जटायु, शबरी, हनुमान आदि। ये विभिन्न मानवीय गुणों का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। उनका आचरण देखकर पाठक स्वयं सोचने लगते हैं, 'हां' आदर्श पुत्र हो तो ऐसा होना चाहिए, पुत्र वत्सल

पिता ऐसे ही होते हैं, भाई का प्रेम, पत्नी की पति भक्ति, स्त्री की सेवा भावना जो कभी किसी की शिकायत नहीं करती है और हमेशा दूसरों की सहायता करने में तत्पर रहती है, बुद्धिमान और उत्साही परामर्शदायता, संकट में साथ देनेवाला मित्र, सेवक जो अपनी सुविधा की अपेक्षा स्वामी की सुरक्षा पर अधिक ध्यान देता है, संत महात्मा जो परम पद को छोड़कर और किसी सुख की कामना नहीं रखता है और एक कार्यकारी समर्थ व्यक्ति जो अपने कर्तव्य का पालन समर्पित भावना और निष्ठा से करता है। इन सभी आदर्शों के प्रतिदर्श रामायण में मिलते हैं।

रामायण मुख्यत: एक पारिवारिक महाकाव्य है। इस काव्य का मूल स्वर परिवार है जो कि सामाजिक समरसता, मानव-गौरव और भ्रातृत्व की विराट् भावना की बुनियाद है। इसमें तीन प्रकार के भ्रातृ-युगल दिखाई देते हैं—राम और भरत, बाली और सुग्रीव तथा रावण और विभीषण। इसी प्रकार तीन प्रकार के जीवन-साथी है—राम और सीता, बाली और तारा तथा रावण और मंदोदरी। सीता-राम हृदय-संगम के आदर्श प्रतिरूप हैं। बाली और तारा में समानता कम होने पर भी समरसता बराबर है। रावण और मंदोदरी के आदर्शों में काफी अंतर होने पर भी एक दूसरे के प्रति अनुराग, सद्भाव और सदाशय में कोई कमी नहीं है। सीता, तारा और मंदोदरी—तीनों में से सीता सर्वाधिक पूजनीय है, हालांकि लौकिक दृष्टि से उनको सबसे अधिक पीड़ा सहनी पड़ी। तारा सबसे अधिक सुखी रही और मंदोदरी का स्वाभिमान सर्वोपरि है। उनका स्वभाव, व्यवहार और आदर्श संसार के समस्त स्त्री-पुरुषों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। यह विडंबना की बात है कि सारा संसार सीता और राम को आदर्श दंपति मानकर उनकी पूजा करता है। किंतु उनका जैसा दांपत्य जीवन किसी को भी स्वीकार्य नहीं होगा। इससे स्पष्ट होता है कि उनके दांपत्य जीवन में मानव की सहनशीलता का कितना उदात्त उन्नयन हो पाया है। पीड़ा सहने से यदि लोक कल्याण संभव है तो सहनशीलता तपस्या बन जाती है। वाल्मीकि ने अपनी कृति रामायण के माध्यम से मानव-जाति को यही संदेश दिया है।

रामायण इस सत्य का भी प्रतिपादन करती है कि मानसिक संतुलन बनाए रखने से पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जन-जीवन को घोर-विपत्तियों से बचाया जा सकता है। कैकेयी ने अयोध्या और राज-परिवार में जिस अनर्थ की भीषण ज्वाला भड़का दी, राम और भरत ने उसको अपने संयत संतुलन के बल पर बचा दिया। विभीषण ने अपनी दूरदर्शिता से लंका को पुनर्वासित करा दिया। हनुमान ने अपने राजनीतिक विवेक और गतिशील दृष्टि से किष्किंधा में न्याय और व्यवस्था को पुन: स्थापित करा दिया। जनक, दशरथ, भरत और राम जैसे महान् शासकों की कार्यविधि से संसार भर के प्रशासकों को जनशक्ति के संचालन तथा मानव-प्रबंधन के क्षेत्र में मार्गदर्शन मिल सकता है। रावण और बाली जैसे अकुशल शासकों से आम जनता को इस बात की सीख भी मिल सकती है कि बुरी तरह से बनाई गई योजनाओं और उद्धत राजनीति का प्रभाव

कितना हानिकारक हो सकता है। इस प्रकार शांति और समृद्धि के कर्ता-धर्ताओं के लिए रामायण मानव संसाधन विकास की मार्गदर्शिका बन सकती है।

रामायण का एक और महत्वपूर्ण पहलू है जो उसे प्रापंचिक परिधि से ऊपर उठाकर एक उच्चतर मनोभूमिका पर प्रतिष्ठित कर देता है। यही आध्यात्मिक दृष्टि भंगिमा है। लोगों का यह विश्वास है कि वैदिक दृष्टि और काव्य सृष्टि की क्षमता से संपन्न वाल्मीकि की मनीषा ने 'रामायण' के माध्यम से वेदार्थ का सार और वैदिक सूक्तियों का वैभव मानव-जाति तक पहुंचाया है। सुंदर कांड सारा का सारा इस प्रकार की महत्वपूर्ण अभिव्यंजना का भंडार है। राम को अयोध्या वापस ले जाने जब महान् ऋषि, सेनानी, माताएं, भाई-बंधु और निष्ठावान् नागरिक चित्रकूट में एकत्रित होते हैं तो राम उस प्रबुद्ध वर्ग को संबोधित कर जीवन के शाश्वत मूल्यों पर अपने अमूल्य विचार व्यक्त करते हैं। यह उद्‌बोधन, संक्षिप्त होते हुए भी, इस प्रकार की विशिष्ट वाणी का एक उज्ज्वल नमूना प्रस्तुत करता है। जो लोग इस प्रकार की परिमार्जित वाग्-विभूति की गहराई में जाना चाहते हैं उनके लिए रामायण गहन अध्ययन का अक्षय भंडार है क्योंकि इस प्रकार के प्रसंग इस काव्य में सर्वत्र पाए जाते हैं। वस्तुत: महर्षि वाल्मीकि के इस महाकाव्य ने असंख्य साहित्य सेवियों को सदियों से प्रेरणा प्रदान की है और आज भी यह वाक्-संस्कृति का आदर्श प्रतिमान है।

आम आदमी के लिए भी वाल्मीकि वाक्-संस्कृति के अनेक उदाहरण प्रस्तुत कर जीवन की दैनंदिन समस्याओं को हल करने में इसकी भूमिका समझाते हैं। वाल्मीकि अक्सर वाक्यज्ञ, वाक्य विशारद, वाक्य कोविद, वाक्-सारथी, वाग्-विदांवर आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। दैनंदिन जीवन में वाक्-संस्कार की भूमिका को स्पष्ट करना ही इसका उद्देश्य है। यदि लोग अपने विचार सही ढंग से व्यक्त करने के लिए समर्थ और शालीन भाषा का प्रयोग करने की कला में निपुण हों, तो घरेलू, सामाजिक, राष्ट्रीय और भूमंडलीय समस्याओं का भी समाधान किया जा सकता है। परम पावनी सीता प्रसंगवश रावण से पूछती हैं कि क्या तुम्हारे यहाँ तुमको सही रास्ता दिखानेवाला कोई सज्जन नहीं है या यदि है तो भी तुम उनकी बात पर ध्यान नहीं दे रहे हो। यह एक शाश्वत प्रश्न है जिस पर सभी उत्तरदायी व्यक्तियों को विचार करना चाहिए और यह मानकर कि यह प्रश्न उन्हीं से पूछा जा रहा है, इसका उत्तर भी उन्हीं को ढूंढ़ लेना है। इस प्रकार वाल्मीकि रामायण में वाक् संस्कृति को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

वैसे देखा जाए तो रामायण में दो प्रकार की प्रमुख संस्कृतियों को प्रस्तुत किया गया है। एक है—संग्रह और उपभोग की संस्कृति और दूसरी है—संयम और निग्रह की संस्कृति। पहले प्रकार की संस्कृति रावण ने अपनाई और दूसरी संस्कृति के उन्नायक थे—दशरथ। इसलिए इनको दशमुख संस्कृति और दशरथ संस्कृति के नाम दिए जा सकते हैं। दशमुख अपने दसों मुख फैलाकर सब कुछ अपने लिए पाना चाहता है जबकि

दशरथ अपनी दसों इंद्रियों को संयत रखकर सही दिशा में चलते हैं। इधर-उधर भटकने की कोई गुंजाइश नहीं है। परस्पर विरोधी इन संस्कृतियों के संघर्ष से ही सारी समस्याएं उत्पन्न होती हैं और विश्व शांति को खतरा हो जाता है। लंका, किष्किंधा और अयोध्या में इसी समस्या के तीन आयाम देखने को मिलते हैं और तीनों दशाओं में राम, भरत, सुग्रीव और विभीषण जैसे संस्कारी व्यक्तियों ने संतुलन बनाये रखकर जन-जीवन को संकट से बचाया। यह सांस्कृतिक संकट मानव-जाति की सुरक्षा और संपन्नता के लिए केवल समस्या ही नहीं, बल्कि चेतावनी बन जाती है। रामायण इसका समाधान प्रस्तुत करती है।

रामायण में और भी अनेक संस्कृतियों का समावेश है—वेद-संस्कृति से लेकर गीध-संस्कृति तक। किंतु आश्चर्य की बात यह है कि वाल्मीकि का स्पर्श पाकर गीध (जटायु और संपाति) भी निःस्वार्थ सेवा भावना और त्याग-बुद्धि के उच्चतम स्तर तक पहुंच जाते हैं। मानव-संस्कृति के अतिरिक्त महर्षि वाल्मीकि ने प्रकृति-संस्कृति का भी संवर्धन किया है। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पांच तत्व भी मूर्त रूप धारण कर रामायण में प्रत्यक्ष होते हैं। इक्ष्वाकुवंश के राजा सूर्यवंश के हैं और सूर्य युद्धभूमि में राम के सामने प्रकट होकर राम को विजयी बनाते हैं। सुग्रीव को सूर्य के पुत्र और बाली को इंद्र के पुत्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। हनुमान का जन्म वायु देवता की संतान के रूप में हुआ है। अग्नि देवता सीता की अग्नि परीक्षा के अवसर पर राम तथा अनेक देवताओं के सामने प्रकट होकर सीता की पवित्रता को प्रमाणित करते हैं। समुद्र मनुष्य का रूप धारण कर राम के सामने प्रकट होता है और अपनी विवशता के लिए उनसे क्षमा मांगता है, परंतु अपने को पार करने का उपाय बताता है। सीता तो धरती माता की बेटी है, धरती से जन्म लेती हैं और अंत में धरती में ही लीन हो जाती हैं। इस प्रकार वाल्मीकि इन पांचों तत्वों को अपनी कृति के पात्र बना देते हैं—दृश्य और अदृश्य दोनों प्रकार से। अपनी काव्यात्मक कल्पना के सहारे प्रकृति का यह मानवीकरण करने में कवि का आशय यह है कि पुरुष और प्रकृति के पारस्परिक प्रतीकात्मक संपर्क के महत्त्व को उनके पाठक समझ सकें।

मानव-जाति के लिए रामायण का संदेश बहुमुखी है। किसी भी दृष्टि से देखें, यह प्रशस्त कृति संसार को बहुत कुछ दे सकती है, बहुत कुछ कह सकती है। नर-नारी, पशु-पक्षी और समस्त जीव राशि को इस अमोघ रचना से जितनी अपेक्षाएं हो सकती हैं, उनसे भी अधिक कहने के लिए पर्याप्त भंडार इसमें है।

ग्रंथ-सूची

1. श्रीमद् वाल्मीकि रामायण : (मूल पाठ) गीता प्रेस, संवत् 2020.
2. स्टडीज़ इन वाल्मीकीस रामायण : जी. एस. अल्टेकर, भंडारकार ओरियंटल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना, 1987.
3. राम कथा : फादर कामिल बुल्के, हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग, 1962.
4. द रामायण पलिटी : पी. सी. धर्मा, भारतीय विद्या भवन, बंबई, 1989 (दूसरा संस्करण)
5. लेक्चर्स ऑन रामायण : टाइट हानरबुल पी. एस. श्रीनिवास शास्त्री, एस. विश्वनाथन प्राइवेट लि. मद्रास (पहला संस्करण 1949, परिशोधित सं. पुनर्मुद्रम, 1977.)
6. रामभक्ति शाखा : राम निरंजन पाण्डेय, नव हिन्द पब्लिकेशन्स, हैदराबाद, 1960.
7. वाल्मीकि चरित्रम् : रघुनाथ नायकुडु (1600-1631) संपादक : बिरुदु रामराजु, आंध्रप्रदेश साहित्य अकादमी, हैदराबाद।
8. महर्षि वाल्मीकि : चलसानि सुब्बा राव, मछली पट्नम, 1988.
9. थाट्स ऑन रामायण : इलयावुलूरि पांडुरंग राव, अक्षर भारती, कलकत्ता, 1992.
10. श्री रामायण तरंगिणी : पोलूरि हनुमज्जानकिराम शर्मा, नेल्लूट, 1987.
11. श्री रामायण दर्शनम् : वही, 1993.
12. राम कथा नवनीत : इलपावुलूरि पांडुरंग राव, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली- 1991.
13. विमेन इन वाल्मीकि : वही, आंध्र महिला सभा, हैदराबाद, 1978.
14. रामायण परमार्थम् : वही, युवभारती, सिकंदराबाद, 1980 पुनर्मुद्रण : तिरुमल निरुमति देवस्थानम्, 1985.
15. अनुदिन रामायणम् : वही, तेलुगु विश्वविद्यालय, हैदराबाद, 1991.
16. षोडशी : जी. शेषेन्द्र शर्मा, ज्ञान बाग पैलेस, हैदराबाद।

विश्व में आदिकवि के रूप में विख्यात **वाल्मीकि** भारतीय साहित्य के ध्रुव नक्षत्र हैं। इस महान् काव्यर्षि की एकमात्र उपलब्ध कृति 'रामायण' ने न केवल उनको चिर यशस्वी बनाया, बल्कि आर्ष दृष्टि और काव्य-सृष्टि के संश्लिष्ट समन्वय पर आधारित भारतीय वाङ्मय में सृजनशील कृतित्व की एक स्थायी परम्परा को उद्घाटित किया है।

यह परिचय-पुस्तिका इस ऋषि-तुल्य कवि के सन्देश को अनुस्वरित करती है जिसको उन्होंने अपने पात्रों और उनके विचारों, उक्तियों और क्रियाओं के माध्यम से प्रसन्न रमणीय शैली में सम्प्रेषित किया था और जो कि सदियों से सारस्वत जगत् के लिए प्रेरणा और मार्ग-दर्शन का अक्षय स्रोत सिद्ध होता रहा है। इस पुस्तक के सात अध्याय महामानव और महाकवि के रूप में महर्षि वाल्मीकि को अवगाहन करने के लिए एक गहन अन्तर्दृष्टि प्रस्तुत करते हैं। अमर काव्य 'रामायण' के प्रणेता की महती मेधा को समझने में सहायक यह सुरम्य भूमिका मानवीय जिजीविषा से सम्बन्धित महाकवि के भव्य दर्शन तथा इस कालजयी कृति के दार्शनिक आधार को आरेखित करती है। यह रेखा तब तक अक्षुण्ण रहेगी जब तक प्रकृति और पुरुष की आवश्यकता बनी रहेगी।

तेलुगु, हिन्दी और अंग्रेज़ी में लगभग पचास से भी अधिक कृतियों के यशस्वी प्रणेता और ओजस्वी वक्ता डॉ. इलपावुलूरि पाण्डुरङ्गराव ने तुलनात्मक भारतीय साहित्य और भारतीय दर्शन, विशेषकर भारतीय भाषाओं के रामकथा साहित्य का विशेष अध्ययन किया है। विद्वान् लेखक ने देश-विदेश में रामायण पर अनेक व्याख्यान दिये हैं।



साहित्य अकादेमी

ISBN 81-260-0171-2



www.sahitya-akademi.gov.in

₹50/-